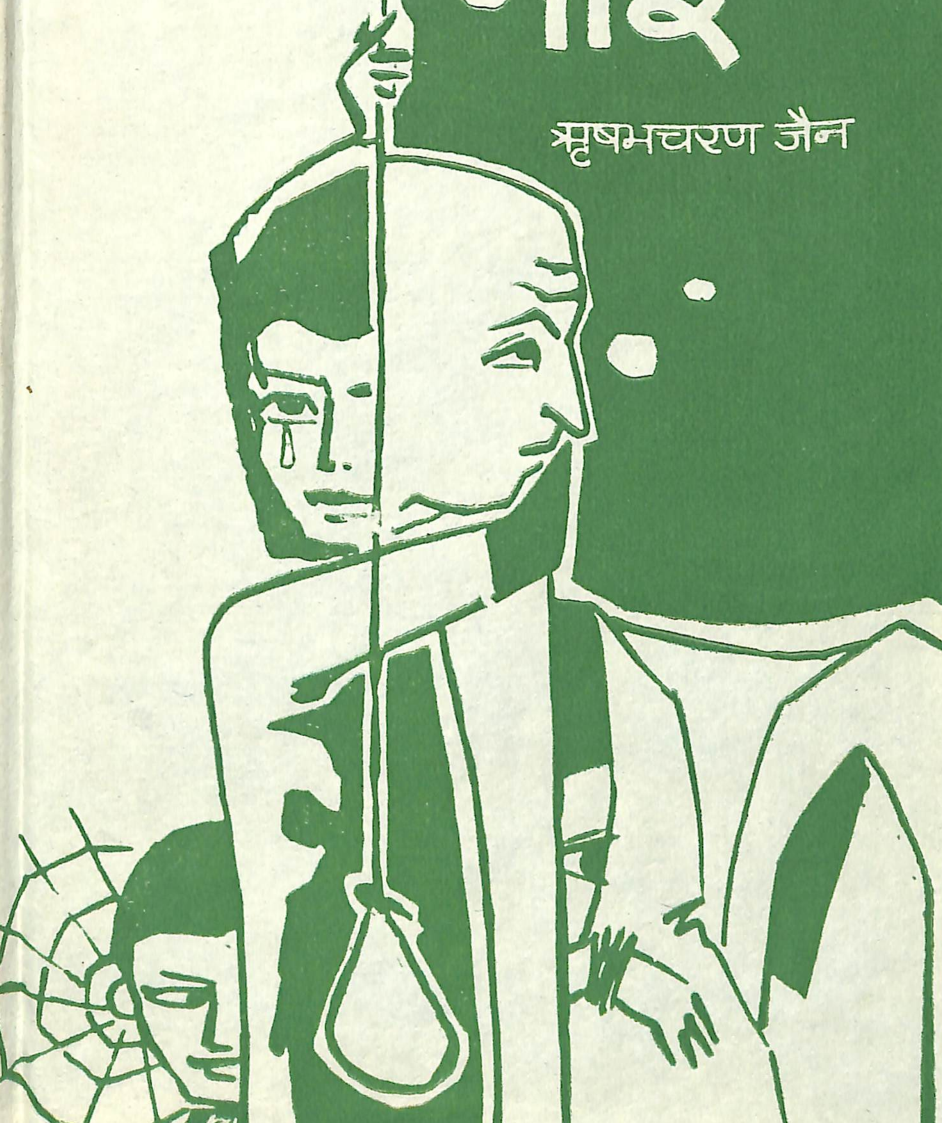
माई

ऋषभचरण जैन



प्रथम छात्र-संस्करण	१९८५
मूल्य	पन्द्रह रुपए
प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ॠषभचरण जैन एवम् सन्तति २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२
मुद्रक	नागरी प्रिंटर्स द्वारा ग्रन्थशिल्पी, दिल्ली-३२

भूमिका

श्री ऋषभचरण जैन का जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला बुलन्दशहर के सराय सदर गाँव में सन् १९११ में एक मध्यवर्गीय जैन परिवार में हुआ था। साहित्य-रचना के बीज उनमें किशोरावस्था में ही व्यक्त होने लगे थे—प्राय: दो दशकों के अल्प लेखन-काल में ही उन्होंने हिन्दी-कथा-साहित्य को जो विविधतापूर्ण परिदृश्य प्रदान किए, वे इसके प्रमाण हैं। हिन्दी के यथार्थवादी कथा-साहित्य के वे अग्रणी लेखक हैं—उग्र, नागार्जुन और रेणु इसी परम्परा की अगली कड़ी हैं। मानवीय सहानुभूति उनके लेखन की अनिवार्य शर्त है, फलस्वरूप पात्रों के मनोविश्लेषण पर उनकी गहरी पकड़ है। जीवन का कोई पक्ष उनकी रचनाओं में अछूता नहीं रहा है, मानव की किसी संवेदना को उन्होंने आँखों से ओझल नहीं होने दिया। उनके मनोविश्लेषण में जीवन की व्यावहारिकता है जिसे उन्होंने प्रेमचन्द से विरासत में प्राप्त किया था। बाद में जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी ने इसी की एकेडेमिक बारीकियों को अपने कथा-साहित्य का विषय बनाया।

'भाई' ऋषभचरण जी का प्रतिनिधि उपन्यास है। इसमें सिंभू और रामसनेही के बचपन का संक्षेप में उल्लेख करने के बाद दोनों चचेरे भाइयों के परिवारों की कथा दी गई है। सिंभू आयु में बड़ा था, रामसनेही छोटा। रामसनेही के पिता की मृत्यु के बाद सिंभू के पिता ने ही उसका पालन-पोषण और विवाह किया था। इसी एक घटना-बिन्दु के कारण सिंभू की पत्नी सरूपी रामसनेही और उसकी पत्नी दुर्गा को अपने सामने कुछ गिनती ही नहीं थी। प्रसंगवश पारिवारिक कलह, गाँव के लोगों द्वारा एक-

दूसरे का पक्ष लेना, इसी बहाने अपनी दुश्मनी निकालना, चोरी, मारपीट, जज-कचहरी और अन्त में हृदय-परिवर्तन—सब-कुछ इस उपन्यास में वर्णित है। बुलन्दशहर के आसपास के जनपदीय जीवन का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करने में उपन्यासकार को उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है।

श्री ऋषभचरण जैन हिंदी के उन उपन्यासकारों में हैं जिन्होंने प्रेमचंद-युग में लिखना आरम्भ किया था और शीघ्र ही अपनी अलग पहचान बना ली थी। 'भाई' उपन्यास की रचना उन्होंने सन् १६३१ में की थी—प्रेमचंद के 'गोदान' से प्रायः चार वर्ष पूर्व। ग्रामांचल के कथानक को जिस सहजता, जिस अपनेपन और जिस यथार्थ-बोध के साथ उन्होंने उभारा है, उसे परवर्ती आंचलिक कथा-साहित्य के लिए प्रेरक बिन्दु स्वीकार किया जा सकता है। अनावश्यक विस्तार में न जाकर कहानी की सीधी-सादी संक्षिप्त बुनावट भी इस उपन्यास की अन्यतम विशेषता है, जिसने इसे 'साठोत्तरी लघु उपन्यास' के लिए प्रणम्य कृति बना दिया है।

ऋषभचरण जी की कहानियाँ और उपन्यास केवल ग्रामांचल तक सीमित नहीं हैं, नगर-जीवन की विसंगतियों का पर्दाफ़ाश भी उनकी बेबाक शैली में हुआ है। कोरे आदर्शों के साँचे में अपने पात्रों को ढालना उनका स्वभाव नहीं था, जीवन-यात्रा में आनेवाले संघर्षों को उन्होंने बड़ी सादगी, बड़ी बेरहमी और बड़ी स्वच्छन्दता से उभारा है।

'भाई' उपन्यास की मूल संवेदना है—व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने, स्वार्थ की संकुचित खाइयों से बाहर आने और मानवीय गुणों को निखारने की प्रेरणा देना।—उपन्यास का अध्ययन इसी दृष्टिकोण से अभीष्ट है।

—**सुरेशचन्द्र गुप्त**

प्रोफ़ेसर, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सराय सदर ग्राम
के
निवासियों को

१

चैत की सुबह थी। दो बालक थे, कोई सात-आठ बरस के। एक दूसरे का हाथ पकड़े, किलकारी मारते, उछलते-कूदते मधुपुर गाँव के बाहर की ओर दौड़ते चले जा रहे थे।

गाँव से कोई एक मील की दूरी पर एक कुआँ था और उसके पास ही कच्ची दीवारों पर छाई हुई एक झोंपड़ी। झोंपड़ी खाली थी।

दोनों बालक झोंपड़ी में पहुँचे। जाकर बैठ गए! तब एक कोने में पड़ा हुआ कुछ फूस उठाया। कीचड़-मिट्टी के कुछ कच्चे खिलौने वहाँ पड़े थे। बालक ने उन्हें देखा और हँसते हुए कहा—"सूख तो गए।"

दूसरा बालक, जो बैठा था, बोला—"मैंने कहा न था!"

पहले बालक ने खिलौने लाकर रख दिए। साथी की बात सुनकर बोला—"अभी बिलकुल तो सूखे नहीं; ज़रा कच्चे हैं। फूस न डालते तो अब तक ज़रूर सूख जाते।"

दूसरे बालक ने अपनी बात कटती देख कहा—"फूस न डालते, तो ग़ायब ही हो गए होते, ऐसे भी न मिलते!"

पहले ने उपेक्षा से कहा—"पागल है! कौन इनकी चोरी करने यहाँ आता? झोंपड़ी में खुले रखे रहते!"

"हूँ! देखो," दूसरे ने नाराज़ होकर तर्क किया—"चुन्नी चरवाहे का लड़का यहाँ रोज़ आता है, वही ले लेता या कोई और

ही झोंपड़ी में घुसकर इन्हें तोड़ डालता। या रात को बिल्ली हो आ जाती तो······!"

"उल्लू है !" पहले ने साथी की बात काटकर कहा—"रोज़ तो बिल्ली आती नहीं, आज तेरे खिलौनों की गंध पाकर ज़रूर आती ! रोज़ तो ढोर इधर आते नहीं, आज इन खिलौनों को तोड़ने ज़रूर आते ! चुन्नी चरवाहे का लड़का···"

अपने लिए 'उल्लू' सुनकर दूसरा बालक बड़ा क्रुद्ध हुआ। अपने सभी तर्कों को कटता देखकर तो उससे कतई ज़ब्त न हो सका। बोला—"जो ख़ुद उल्लू-गधे होते हैं, वही दूसरों को ऐसा समझते हैं। मुझे···"

दोनों बालक समवयस्क-से थे, परन्तु पहला दूसरे से अधिक बलवान् और स्वस्थ नज़र आता था। उसे भी अपने अधिक बल का ज्ञान था। उसके निडर और दबंग स्वभाव से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता था। पहला बालक दूसरे पर अपना कुछ अधिकार-सा समझता था। जो शब्द वह साथी के लिए इस्तेमाल करता था, वही उसके मुँह से अपने लिए सुनकर उसने चुप रह जाना ठीक नहीं समझा। अतः उसने उसे चिढ़ाना शुरू किया —सिबू ! (सिभू), खावै निबू ! सिबू, खावै निबू !!

दूसरा बालक अपनी चिढ़ सुनकर पहले रोकर या लड़कर या गाली देकर उसका प्रतिवाद करने को हुआ, पर फिर सँभलकर एक नई चिढ़ द्वारा साथी को चिढ़ाने लगा—रामसनेही टुइयाँ, खावै घुइयाँ ! रामसनेही टुइयाँ, खावै घुइयाँ !!

रामसनेही ने नीति से काम लिया और कहा—"हम चिढ़ते ही नहीं, हम चिढ़ते ही नहीं। सिबू खावै निबू ! सिबू खावै निबू ! सिबू······!"

सिभू ने और एक-दो बार अपना मंत्र पढ़ा, पर रामसनेही को बराबर झूम-झूमकर 'सिबू, खावै निबू' जपते हुए देखकर उसका

रोष, रुदन बनकर, फूट निकला और वह रेत में लोटकर रोते हुए कहने लगा—"साला, बदमाश, रामसनेही···मर जाए !"

"हैं ! गाली !" रामसनेही ने डाँटा और अपने बड़प्पन का पूरा परिचय देने के लिए उसने सिंभू के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

थप्पड़ खाकर सिंभू का रुदन तीव्रतर हो उठा। उसने अपनी और रामसनेही की शक्ति का मुकाबला किए बग़ैर थप्पड़ मारने वाले पर हमला कर दिया और अंधाधुंध लात-घूँसे चलाने लगा। रोना और बकना बराबर जारी था।

रामसनेही ने सिंभू के हमले की शायद कुछ भी परवाह न की। सबसे पहले उसने खिलौनों को बचाने की फ़िक्र की और सिंभू के दोनों हाथ पकड़कर पीछे हटाते हुए ले जाकर कोने में फूस पर ढकेल दिया।

तब वह उसे छोड़कर खिलौनों के पास आ गया।

सिंभू जानता था—उठकर लड़ने गया, तो बुरी तरह पिटूँगा। अतएव उसने वहीं पड़े रहने में कल्याण समझा और पड़े-पड़े रुदन के साथ-साथ ही बक-झक करता रहा।

रामसनेही बैठा-बैठा कुछ देर उसकी तरफ़ देखता रहा, फिर बड़प्पन के भाव से स्नेह-सिक्त स्वर में बोला—"हाँ, तो पचास दफ़े समझाया—गाली बकना अच्छा नहीं, फिर भी नहीं मानता। पता नहीं, किसने इतनी गालियाँ सिखा दीं !"

सिंभू ने ध्यान से रामसनेही की बात सुनी, पर रुदन में अन्तर न डाला।

रामसनेही सिंभू की आदत जानता था। उसने कीचड़ के खिलौनों का निरीक्षण शुरू किया। चार छोटे-छोटे पहिए थे और दो छोटी-छोटी लंबोतरी, परन्तु अपेक्षाकृत मोटी, ईंटें-सी थीं, जिनके बीचोंबीच छेद था। असल में यह गाड़ी बनाने का सामान

था। अभी गाड़ी पूरी करने के लिए सरकंडों की ज़रूरत थी। रामसनेही ने सिभू से, जिसका स्वर मद्धिम होता जा रहा था, कहा—"सिभू ! चल, सरकंडे ला, उठ जल्दी !"

रुदन के स्वर में वृद्धि और कोई अस्पष्ट गाली !

रामसनेही ने प्रेम-भरी कठोरता से कहा—"उठा नहीं ?"

पहले मौन, फिर रीं-रीं !

"उठ। नहीं, मैं ही सरकंडे लाता हूँ।"

परन्तु सिभू ने खेल में शामिल होने का लोभ त्याग दिया और न उठा। हारकर रामसनेही ही उठा। गाड़ी का मिट्टी का सामान उसने कुर्ते में भरकर साथ ले लिया। कहीं गुस्सैल सिभू उसे तोड़-फोड़ न दे !

रामसनेही के जाते ही सिभू का रोना रुक गया। उसने धीरे से आँख खोलकर देखा—झोंपड़ी में कोई न था। एक बार उसके जी में आया कि क्यों आज का खेल खोऊँ ! उठकर रामसनेही के पीछे भाग चलूँ। पर शर्मिन्दगी ! अपमान ! रामसनेही हँसी उड़ाएगा। कहेगा नहीं, तो मन-ही-मन तो ज़रूर ही हँसेगा।

तर्क-वितर्क करके उसने निश्चय किया कि सरकंडे लेकर जब रामसनेही आएगा और उससे खेल में शामिल होने को कहेगा, तो वह अधिक मान न करेगा और शामिल हो जाएगा।

वह फूस पर पड़ा-पड़ा ही रामसनेही का इन्तज़ार करने लगा।

पड़े-पड़े कब नींद आ गई, इसका उसे पता नहीं।

× × ×

आधा घंटे बाद रामसनेही हरी मूंज की बेढंगी रस्सी गाड़ी में बाँधे, रस्सी खींचते हुए झोंपड़ी में आया। गाड़ी की तरफ़ बड़े चाव से देखते हुए वह सिभू को सुनाने के लिए आप-ही-आप

कहने लगा—"हमने गाड़ी भी तैयार कर ली, और कोई आदमी रो ही रहा है ! बस, अब मैं तो घर जाता हूँ, कोई चाहे यहाँ पड़ा-पड़ा रोवे या झीखे......"

सिभू पर इसका कुछ असर न हुआ । वह चुपचाप पड़ा रहा । रामसनेही उठकर उसकी तरफ़ गया और आवाज़ दी—"सिभू !" पर सिभू बेख़बर सो रहा था ।

गाड़ी बनाने में रामसनेही को काफ़ी परिश्रम करना पड़ा था । सिभू को सोते देखकर उसके शरीर में भी आलस्य पैदा हुआ और उसने छोटे-छोटे हाथ उठाकर, पतले-पतले होंठ खोलकर अँगड़ाई और जमुहाई ली, सिभू के विषाद-युक्त मुख को बड़े प्रेम से देखा और तब उसके गले में हाथ डालकर, छाती से छाती भिड़ाकर सो रहा ।

कैसा दुर्लभ स्नेह था !

□□

२

पिछली घटना के ठीक उन्नीस बरस बाद एक दिन तीसरे पहर मधुपुर गाँव में बड़ा होहल्ला मचा। मर्द सब खेतों पर गए हुए थे। औरतों में जो बातें हुईं, ज्यों-की-त्यों उद्धृत करते हैं—

"......पर कुछ भी हो, रामसनेही को सिभू की बहू पर हाथ नहीं उठाना चाहिए था। औरतों के झगड़े से मर्दों का क्या काम?"

"बीबी, अनीति तो इस सरूपी ने भी कम नहीं की है। ऐसी कड़कड़ा कर कोसती है कि सुननेवालों तक का कलेजा थर्रा उठता है। वह तो बिचारी रामसनेही की बहू ही है, जो सह लेती......"

"कौन, दुर्गा?"

"हाँ।"

"अजी, राम का नाम लो। तुम क्या जानो; मैंने ज़माना देखा है! ऐसी हर्राफ़ औरत दुनिया के पर्दे पर ढूँढ़े नहीं मिले! बिना उसके सिखाए खसम की ताब थी, जो पराई स्त्री पर हाथ उठा बैठता?"

"......हाँ, होगी; किसी के मन की कौन जाने!"

"सब जानी-जूनी है। सौ सुनार की से एक लुहार की ज़्यादा होती है। उसने मुँह से सौ दफ़े बक-झक की, तो इसने एक बार ही बिचारी को पिटवा दिया। सरूपी चाहे जितना बक ले, पेट की

काली नहीं है और इस दुर्गा की···अजी, बस-बस, इसके पेट की तो राम ही जानता है !"

"······सचमुच, बात तो यही है। दुर्गा की वाहवाह तो तब होती जब रामसनेही का हाथ पकड़ लेती और सरूपी को बचा देती। अपने सामने-सामने जिठानी को पिटवा दिया···यह तो तारीफ़ की बात नहीं है।"

"हाँ, यह तो है ही !"

× × ×

"बात क्या हुई, चाची ? तुझे पता है कुछ ?"

"अरी, यह है न सिंभू की बिगड़ैल, सरूपी ! पहुँच गई आज सबेरे-ही-सबेरे बिचारी दुर्गा के घर। संयोग की बात, आज रामसनेही घर में ही था। दुर्गा तो सुन लेती थी; वह आखिर मर्द की जात; आ गया गुस्सा। थोड़ी देर तो सुनता रहा, जब न सही गई, तो सामने की खीर भरी थाली उठाकर मुँह पर फेंक मारी। सारा मूँह जल गया। भागी वहाँ से 'बाप ! बाप !' करती। मार के आगे तो भूत नाचते हैं न ? सारा नशा उतर गया।"

"अब पड़ी है, सूखे चून में मुँह छिपाए। भला कोई कहाँ तक सुने ? अब आ गई होगी अकल ठिकाने !"

"पर चाची, रामसनेही को दूसरे की औरत पर हाथ उठाना ठीक था ? औरतें आपस में लड़ें या मरें; मर्द को बोलने का···"

"अरी, कोई बात है ! उसने तो दोनों हाथ पसार-पसारकर रामसनेही को कोसना शुरू कर दिया था। आख़िर कोई कहाँ तक सुने ! दुर्गा कोई सरूपी की दबैल नहीं; रामसनेही सिंभू का नहीं। धनवाले की बेटी है, तो किसी पर एहसान थोड़े ही है···"

"पर चाची, दुर्गा की कोई तारीफ़ तो रही नहीं···।"

"कैसे ?"

"उसने अपने सामने-सामने जिठानी को पिटने दिया, कुछ नहीं बोली।"

"वाह ! पीटने को क्या किसी ने उसके लट्ठ मारे थे ! गुस्से में आकर खीर की थाली फेंक दी, उसे वह बीच ही में कैसे रोक लेती ? बहुतेरे तो हाथ जोड़े—'बीबी, इस बखत जाओ; क्यों झगड़ा बढ़ाती हो; रोटी निबट जाने दो !' पर वह तो लंका बनकर आई थी। किसकी सुनती ?"

"मैंने तो सुना है, रामसनेही ने सिंभू की बहू को लकड़ियों से पीटा है। क्या यह ग़लत है ?"

"राम ! राम ! लो बोलो, तिल का ताड़ बन गया !"

"तो क्या यह झूठ है ?"

"और क्या सच है ? एक मिनट तो वह वहाँ ठहरी नहीं। खीर ने मुँह जलाया और वह भागी; लकड़ी से कैसे पीट देता ?"

"ठीक है।"

× × ×

"हूँ ! कैसी घुन्नी साँपिन है ! घर बुलाकर बिचारी को पिटवा दिया। देखना क्या होता है, साँझ को ! सिंभू सहर से लौटकर मज़ा चखा देगा। वाह, अच्छी रही; एक इसी के खसम की देह में तो बल है; और तो सब चून के पुतले हैं !"

"अरी, किस पै बिगड़ रही है, रामो ?"

"आओ जिठानी जी, उसी चुड़ैल दुर्गा की बात है; कैसा कुकर्म किया है ! घर में बुलाकर उस बिचारी सरूपी को पिटवाया। कुछ तो लिहाज-सरम रखती; और नहीं, तो जिठानी के रिस्ते को ही……"

"तू बावली हुई है, रामो! दुर्गा बिचारी का क्या खोट ? अनरथ की जड़ तो यह सरूपी ही है। इतने दिन से तू देख रही है, रोज़

इनके घर में लड़ाई होती है; किसी दिन दुर्गा की आवाज़ भी सुनी ?"

"वाह जिठानी जी, तुम्हें क्या पता ? सारे बिस के बीज तो इसी दुर्गा के बोए हुए हैं; इसके पेट में डाढ़ीवाला खेलता है !··· हूँ ! मरद से जिठानी को पिटवा दिया !···कलजुग है, कलजुग ! ·····ख़ैर उसका भी तो मरद है, अब लौटकर आ जाता है सहर से ! फिर दखूँगी, कहाँ जातो है इस रमसनेहिया की बहादुरी ! थाने-पुलिस में न दोनों घिसटें, तो नाम बदल देना।"

"वाह ! अच्छी हिमायतन बनी है ! उसका खाट भी देखा ? आदमी के सुनने की भी हद होती है। वह अमीर की बेटी है, तो बाप का धन किसी को बाँट थोड़े ही देती है ? न कोई उसकी ख़ैरात खाता है ! फिर कोई क्यों किसी की सुने ? और, इस दुर्गा बिचारी ने तो उस बखत भी बहुतेरे हाथ जोड़े—'जिठानो जी, चली जाओ; रोटियों में बिघन मत डालो, मत डालो।' पर वह कैसे मानती, उसके सिर पै तो आज सनिच्चर खेल रहा था ! भला आपस में लड़ें तो लड़ें, मरदों के सामने तो उजागर न हों ! और, ऊपर से तू उसकी तारीफ़···"

"तुम्हें मालूम क्या है जी, मरदों को औरतों के बीच में दखल देना ही नहीं चाहिए। मेरे दादा की दो बहुएँ थीं, दोनों आपस में लड़तीं, तो आप बाहर निकल जाते। यह है मरदों का फ़रज़ ! यह थोड़े ही कि ज़रा-सी बात सुनी और दूसरे की औरत पर हाथ चला बैठे ! यह भी कोई हँसी-खेल समझा है ? आने दो सिंभू को, इस रमसनेहिया ने दस बरस चक्की न पीसी, तो मेरा नाम नहीं !"

"चक्की पिसवाना तो जैसे मामूली बात है ! जज्ज-बलिस्टर भी तो कानून से लड़ते हैं। अँगरेज़ सरकार है; कोई अंधेर है ! सारा गाँव रामसनेही की तरफ़ है। तेरे-जैसी चुड़ैलों के कहे

का…"

"बस, जीभ रोक के बात कर! चुड़ैल तू होगी! मैं तो जिठानी-जिठानी करती हार गई, आप चुड़ैल-चुड़ैल करने लगीं। सारा गाँव तेरी तरह दुर्गा के टुकड़े थोड़े ही तोड़ता है, जो उसकी तरफ़ हो जाएगा। घबरा मत, तुझे भी जेल की…"

"अरे मेरी सौत! ठहर तो, तुझे ठीक करूँ। लो बोलो, हमारे सामने ब्याही आई और हमारे साथ ही ज़बानदराजी करती है!"

गुत्थमगुत्था, मार-पिटाई और एक नई लड़ाई का सूत्रपात!

× × ×

सिंभू पहर रात गए लौटा। घर का द्वार खुला पड़ा था। धक् से रह गया! आज क्या हुआ? कहीं ज़हर खाकर तो नहीं सो गई?

धीरे-धीरे घर में घुसा। दिया-बाती कुछ नहीं, सर्वत्र अंधकार! आवाज़ दी—"मनोहर!"

मनोहर उसके तीन बरस के बच्चे का नाम था। कोठे से सिसकियाँ सुनाई दीं। सिंभू ने पहचाना—सरूपी! अरे, क्या हुआ इसे?

सिंभू ने धीरे-धीरे कोठे के दरवाज़े को छुआ। किवाड़ खुले थे। ठेलकर भीतर घुसा।

सरूपी ने पति की आवाज़ सुनी थी। कटोरदान में सूखा आटा भरे वह उसमें अपना जला मुँह छिपाए पड़ी थी, वैसे ही पड़ी रही। न हिली, न डुली; हाँ, ज़रा आवाज़ ऊँची कर दी।

सिंभू ने कमर का बोझा उतारकर रखा, माथे का पसीना पोंछा और आशंकित हृदय से स्त्री की ओर चला।

पास जाकर पुकारा—"मनोहर की माँ!"

सिसकी और हिचकी; कोई उत्तर नहीं।

सिंभू ने सरूपी के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"क्या हुआ ?"

फिर मौन !

"मनोहर की माँ ! मनोहर की माँ ! !"

"हूँ।"

"क्या हुआ ? ऐसे क्यों······?"

अब की बार मनोहर की माँ ने कटोरदान में से मुँह निकाला —"हुआ तुम्हारा सिर ! अब की बार मेरी जान पर बीतेगी !"

सरूपी यह कहकर खुलकर रोने लगी।

"आख़िर······" ग़रीब सिंभू ने अपने खिन्न हृदय को सँभालकर पूछा—"बात क्या हुई ? कुछ साफ़ तो कहो।"

सरूपी का रोना ख़त्म न हुआ।

सिंभू का धीरज छूट गया। रोज़ की लड़ाई ने उसका हृदय पका दिया था। शहर की बीस कोस की मंज़िल से उसे जितनी थकान या तकलीफ़ हुई थी, उससे कई गुना अधिक इस नए पचड़े को देखकर हुई, जिसका परिणाम पता नहीं क्या होना था और जिसे सुलझाने में पता नहीं उसे कितनी परेशानी का सामना करना था ! सरूपी के मौन से वह भूखा-प्यासा ग़रीब जल्दी ही घबरा उठा। स्त्री की अधिक खुशामद या दिलजोई करने में अशक्त हो वह खाट पर बैठ गया। आँखों में आँसू आ गए, कहने लगा— "सरूपी, तुममें दया का लेश नहीं। बीस कोस से एक साँस चला आता हूँ। सुबह दस बजे दो पैसे के चने खाए थे। आशा थी, घर जाकर रोटी मिलेगी, थकान उतरेगी; पर मिला क्या, मेरा खून चूसनेवाली एक नई मुसीबत !···हे भगवान् ! इतने रोज़ मरते हैं; मुझे भी क्यों नहीं बुला लेते !"

यह वह चोट थी, जो स्त्री के वज्र हृदय को भी तिलमिला देती है। अपनी तकलीफ़ को भूलकर सरूपी उठ खड़ी हुई। दिया

जलाया। तब सोते हुए बालक मनोहर को गोद में लेकर कहने लगी—"तुम्हें क्या मालूम, तुम्हारे लाड़ले भाई ने मेरी कैसी दुर्गत की है ! सारा गाँव थू-थू कर रहा है । यह देखो—"

सरूपी ने कपड़ा हटाकर मुँह दिखाया। उसकी तत्परता ने सिंभू का दुख कुछ हल्का किया। सरूपी के मुंह पर कई छाले पड़े हुए थे । दुपट्टे से पैरों तक गर्द झाड़ता हुआ कहने लगा—"हूँ ! ··· यह कैसे हुआ ?"

पति का भाव सरूपी को रुचा नहीं। तो भी कहने लगी--"बात यह थी कि आज मनोहर उस घनश्याम के साथ खेलता-खेलता वहाँ चला गया । जब लौटकर आया तो मैंने देखा, इसके सिर के एक तरफ़ के थोड़े-से बाल किसी ने काट लिए हैं। मेरे बदन में आग लग गई । फिर भी मैं कलेजे पर पत्थर रखकर सहज-सुभाव पूछने गई । रामसनेहिया भी वहीं बैठा था। मुझे देखते ही पतिंगे लग गए और बात पूछते ही थाली उठाकर मेरे मुंह पर दे मारी। बताओ, मेरा पाँच हाथ का आदमी होते मैं पराए मर्दों की मार खा लूँ ! धिक्कार है मुझे !!"

सरूपी के आँसू फिर दौड़ आए।

सिंभू कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"इसमें कितना सच है, कितना झूठ ?"

"हाय !" सरूपी रोते हुए बोली—"तुम मेरी बात का बिसवास नहीं करते ! मेरे दरोगा भाई की अरथी निकले, जो एक अच्छर भी झूठ हो ! हाय मेरे राम !" सरूपी इस तरह चुप हो गई मानो उसने अपने साहस से ऊँचा काम कर डाला हो।

सिंभू चुप। थोड़ी देर बाद बोला—"तुमने उसके घर जाकर सहज-सुभाव से बात की ?"

"हाँ।"

"···बिलकुल सहज-सुभाव से···"

सरूपी अधिक न सह सकी। बोली—"और कैसे तुम्हें बिसवास दिलाऊँ? अपने राजा-से भाई की कसम खा ली, तो भी एतबार नहीं! हाय माँ! तूने पैदा होते ही मुझे क्यों नहीं मार डाला! अच्छे के हाथ सौंपा, जो अपनी औरत को पिटवाकर इस तरह चुपचाप बैठा है! धिक्कार है ऐसी मरदूमी पर!!"

सिभू हारा-सा बैठा रहा। फिर कहने लगा—"सरूपी, तू मुझे जोश मत दिला। अगर और किसी की बाबत ऐसा सुनता, तो अब तक मैं ही रहता या वह! पर जब अपना पैसा खोटा हो, तो परखनेवाले का क्या दोस! जब तुझमें ही खोट है, तो मैं और किसी से क्या कहूँ! चार बरस गौने को हुए; इन चार बरसों में तूने सब जगह अपना नाम ज़ाहिर कर लिया। कोई तेरी तारीफ़ नहीं करता। सब कहते हैं—अमीर की बेटी है, माँ-बाप की सिरचढ़ी है। उधर सब कोई रामसनेही और दुर्गा की तारीफ़ करते हैं। कोई उनके ख़िलाफ़ नहीं है। कोई उनकी शिकायत नहीं करता। चार बरसों में तूने हज़ारों ऐसी बातें मुझसे कही हैं, जो अन्त में ग़लत साबित हुईं। कहने को मुझमें और रामसनेही में दो पीढ़ियों का फटाव है, पर हम सदा सगे भाई से बढ़कर प्रेम से रहे। तेरे राज में चूल्हा अलग हुआ; घर अलग हुआ। अब बोलचाल बाकी रही है, कहे तो इसको भी बन्द कर दूँ? तूने बोलचाल बन्द कराने के लिए भी सैकड़ों फन्द-फ़रेब रचे, सैकड़ों कसमें खाइ, पर अन्त में सब ग़लत साबित हुए। बता, तेरी इस कसम पर कैसे विश्वास करूँ?"

सरूपी पति की लंबी वक्तृता से ऊब-सी उठी थी। जब सिंभू चुप हुआ, तो कहने लगी—"अब तुम्हें मैं कैसे बिसवास दिलाऊँ? कहो जिसकी कसम खा जाऊँ, कहो जो करूँ। अब की दफ़ा सारा गाँव गवाह है और मेरे मुंह की दशा तो तुम ख़ुद भी देख रहे हो। क्या मुंह भी मैंने तुम्हारे भाई को बदनाम करने के लिए जला

लिया ?"

अब की बार सिभू बहुत देर तक चुप बैठा सोचता रहा। सरूपी कहने लगी—"दूसरे की स्त्री पर हाथ उठाना क्या हँसी-खेल है ! सबेरा होने दो, मैं ख़ुद थाने में रपट लिखाकर आऊँगी। अब तक तुम्हारी बाट देख रही थी। पर तुम···तुम किसी लायक नहीं हो। तुम भाई से बोलचाल किया करो; मैं उस पर मुक़दमा चलाऊँगी। कल ही मकदूमा नाई के हाथ दरोगा भाई को बुलवाती हूँ। चाहे धन को पानी बनाना पड़े, पर इस नासपीटे को जेल कराकर छोड़ूँगी। इसने समझा क्या है ! !"

सिभू ने लंबी साँस छोड़ी और अपने से ही कहा—हे भगवान् ! कैसे इस घर का कलेस मिटेगा ! फिर स्त्री से बोला—"अच्छा, सुबह होने दो; अब सो जाओ।"

बेचारा सिभू भूखा-प्यासा चारपाई पर पैर फैलाकर पड़ रहा।

सरूपी कब तक बड़बड़ाती रही, इसका पता नहीं।

□□

३

एक सहन है। सहन कच्चा होने पर भी साफ़ और समतल है। कहीं किसी प्रकार की गंदगी या कूड़े-कर्कट का नाम नहीं। एक तरफ़ लकड़ी की घड़ौंची पर पानी के कुछ मिट्टी और पीतल के पात्र रखे हैं। सामने की तरफ़ एक छोटा-सा कच्चा दालान है।

इस दालान में खाट पर एक पच्चीस बरस का हृष्ट-पुष्ट ग्रामीण बैठा है। नीचे ज़मीन पर उसकी स्त्री हाथ में पंखा लिए धीरे-धीरे पति पर झल रही है।

युवक रामसनेही है, युवती दुर्गा।

थोड़ा-सा कुटुंब का इतिहास कहना है। रामसनेही और सिंभू जाति के चौहान, औरएक ही दादा के पोते थे; अर्थात् चचेरे भाई। परंतु अपने पिताओं की एकमात्र संतान होने के कारण दोनों साथ-साथ ही रहते थे। प्रेम सगे भाई से भी अधिक था। बचपन में साथ-साथ खेले थे, विवाह तक दोनों का व्यवहार वैसा ही स्नेहपूर्ण रहा। सिंभू रामसनेही से कुछ महीने बड़ा था। रामसनेही के पिता का देहांत उसकी ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। सिंभू के पिता ने ही उसे पाला और समयानुसार उन्होंने ही उसका विवाह किया। उसके बाद वे ख़ुद इस संसार को छोड़कर चलते हुए।

सिंभू रामसनेही को सगे भाई से अधिक समझता था, पर

शारीरिक शक्ति में रामसनेही से कमज़ोर होने के कारण एक प्रकार की चिड़चिड़ाहट सदा उसके हृदय में बनी रहती थी। इस चिड़चिड़ाहट में विद्वेष नहीं था, क्रोध नहीं था, शत्रुता नहीं थी; केवल पराजय और दीनता का थोड़ा-सा खिसियानापन था। इस खिसियानेपन के कारण उसके भ्रातृ-प्रेम में कोई बाधा नहीं पड़ती थी; बल्कि भाई के व्यक्तित्व का एक ऐसा ऊँचा भाव उसके मन में जम गया था कि उसके विरुद्ध जाने के लिए उसका मन एका-एक तैयार न होता था।

सरूपी और दुर्गा के चरित्र तथा स्वभाव में बड़ा अन्तर था। सरूपी बकवादी थी, दुर्गा गंभीर; सरूपी क्रोधी थी, दुर्गा सहन-शील; सरूपी गोरी थी, दुर्गा साँवली; सरूपी अमीर की बेटी थी, दुर्गा ग़रीब की। ब्याह होकर आते ही सरूपी को रामसनेही पर अपने एहसान का आभास मिल गया। एक प्रकार के बड़प्पन का भाव उसके हृदय में पैदा हो गया। रामसनेही उम्र में उससे बड़ा था, पर सरूपी का व्यवहार वैसा न था। रामसनेही को वह अपना आश्रित—नौकर से कुछ ही ऊँचा समझती थी।

उसके ससुर ने रामसनेही का विवाह करा दिया, तो मानो उसका अधिकार और एहसान कई गुना अधिक हो गया। राम-सनेही की बहू आई, तो उस पर भी वह अपना यह बढ़ा हुआ अधिकार जताने में न चूकी।

सुशीला दुर्गा ने सरूपी को अपनी बड़ी समझकर उसका सब अनाचार सहन किया। पर इससे सरूपी को कोई खुशी नहीं हुई। कर्कशा स्त्री को वाक्-युद्ध में मज़ा आता है। उसके वाक्-बाणों में जब तक बराबर की टक्कर न लगे, तब तक उसका मन शांत नहीं होता। दुर्गा की सहनशीलता ने उसके संकुचित हृदय पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाला। उसने अधिक-से-अधिक अत्याचार करके दुर्गा को सामना करने पर मजबूर करना शुरू किया।

उसके अत्याचारों का एक उदाहरण गाँव में बहुत प्रसिद्ध था। एक दिन सरूपी रोटी पका रही थी। उसने दुर्गा से कहा—"तवे के नीचे लगाने को मिट्टी की डली ले आ।" दुर्गा गई। मिट्टी की डली मिली नहीं; वह एक छोटी-सी ईंट उठा लाई और लाकर जिठानी के हाथ में दे दी। सरूपी सिर से पैर तक जल उठी। कड़ककर बोली—"अरी, तुझसे मिट्टी मँगाई थी कि ईंट ?" यह कहकर वह ईंट उसने दुर्गा के माथे पर खींच मारी। खून बह निकला।

रोज़ के ऐसे झगड़ों से रामसनेही ऊब उठा। उसने नम्रता-पूर्वक सिंभू से अलग होने की प्रार्थना की। सिंभू भी पत्नी की ज़्यादतियों से अनभिज्ञ न था। उसने आँख में आँसू भरकर राम-सनेही का अलग चूल्हा कर दिया।

इसके बाद भी लड़ाई बंद न हुई। फिर एक दिन रामसनेही और उसकी बहू दूसरे घर में जाकर रहने को मजबूर हुए। लड़ाई अब भी पूरी तरह से बंद न हुई, कुछ कम ज़रूर हुई। कभी किसी बात पर, कभी किसी पर—सरूपी लड़ने आ पहुँचती थी। उस दिन रामसनेही का तीन बरस का बालक घनश्याम मनोहर के साथ खेलते-खेलते नाई की दूकान पर चला गया। वहाँ इन दोनों ने खेल-खेल में अपने सिरों के थोड़े-थोड़े बाल काट दिए। मनोहर जब घर आया और सरूपी ने कटे बाल देखे, तो समझा यह दुर्गा का काम है। वह गालियाँ बकती, चिल्लाती आई और रामसनेही तथा घनश्याम को कोसने लगी। दुर्गा ने हाथ जोड़कर शांत करने की कोशिश की, पर वह न मानी। इसके परिणामस्वरूप जो हुआ, आपको मालूम है।

रामसनेही ने जोश में भरकर थाली फेंक तो मारी, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपने कर्म पर खेद हो आया। रोटी तक न खाई। उद्विग्न चित्त से उसी समय उठकर खेत पर चला गया।

पति का काम दुर्गा को भी पसंद नहीं आया। पर वह कर

क्या सकती थी ? हाँ, रामसनेही के मानसिक अनुताप का आभास वह अवश्य पा गई। इससे उसके हृदय के थोड़ा संतोष हुआ।

रामसनेही शाम को लौटा। दिन भर उसने पछतावा किया। डरते-डरते घर में घुसा। भय था—दुर्गा अवश्य नाराज़ होगी। पर दुर्गा ने एकदम कोई ऐसी बात नहीं कही, जो उसके हृदय को दुख पहुँचानेवाली हो। उसने गंभीर भाव से खाना परोसा। जब पति ने जाकर खाट पर आसन जमाया, तो वह भी पंखा हाथ में लेकर पटरा बिछाकर नीचे बैठ गई।

तब बात शुरू हुई। दुर्गा ने मीठे, परन्तु खेदपूर्ण स्वर में कहा—"आज क्या हो गया था तुम्हें ?"

रामसनेही ने गर्दन नीची कर ली। मुँह से कुछ बोल न सका; चेहरे पर खिसियानापन झलकने लगा।

दुर्गा ने कहा—"हमेशा से इतना सहते आए हैं, क्या आज एक मामूली-सी बात पर इतना बिगड़ बैठना उचित था ? सोचो तो, तुम्हारे भाई और ताऊ ने तुम पर कितने एहसान किए हैं ! ज़रा-सी बात पर तुम्हें अपना धीरज नहीं छोड़ना चाहिए था।"

रामसनेही की आँखों में आँसू भर आए। दुर्गा से यह न देखा गया। कहा—"वाह ! यह भी कोई बात है ! तुमने जो ग़लती की है, रोने से क्या वह दूर हो जाएगी ?"

रामसनेही ने अब की बार सँभलकर कहा—"ग़लती तो बेशक की है; पर बताओ, कहाँ तक सहें, अब तो उनसे कोई सम्बन्ध भी नहीं।"

दुर्गा ने कहा—"अपना-अपना सुभाव है। उसका सुभाव लड़ने का है, हमारा सुभाव सुनने का है।...तुमने साधु और ततैए की कथा नहीं सुनी; साधु ने बार-बार उसे बचाया, पर ततैए ने बार-बार उन्हें काट खाया। सो यह तो अपना सुभाव है। और, हम पर तो उन लोगों का कुछ एहसान है।"

रामसनेही ने कहा—"एहसान है तो मेरे ताऊ का; और किसी का नहीं। फिर मैंने तो उसी दिन से बराबर का कमाया है, जिस दिन बापू मुझे छोड़कर चले गए; मैं कैसा एहसान मानूँ? वे होते, तो ये दिन क्यों देखता?"

रामसनेही फिर रुआँसा हो गया।

दुर्गा ने कहा—"रोना-धोना तो बावलापन है। मर्दुमी इसी में है कि जो कुछ किया, उसका पराशचित करो···।"

रामसनेही चुप रहा। फिर सँभलकर बोला—"क्या कहें, ऐसा मालूम होता है कि सरूपी सिंभू से हमारी बोलचाल भी बंद कराएगी।"

दुर्गा ने कहा—"हाँ, वह तो दिखता ही है। पर तुम्हें अपनी भूल ज़रूर मान लेनी चाहिए। आज सचमुच तुमने नादानी का काम किया है।"

रामसनेही बोला—"ख़ैर, अब जैसा होगा, देखा जायगा। बोलचाल रखने से ही मुझे कौन-सा लाभ था, जो अब न रहेगा!"

"लाभ-वाभ का सवाल तो पीछे है, पहले अपनी इस ग़लती का तो कुछ पछतावा करो।"

"···बोलचाल बंद हो जायगी, तो हो जाय, दिलों की मुहब्बत तो दूर नहीं हो सकती। हाय! अकेली सरूपी की बदौलत हम लोग कितने दूर-दूर होते जा रहे हैं!"

"अपनी-अपनी हाँके जाते हो, मेरी तो सुनते नहीं······।"

"क्या?"

"मैं कहती हूँ, तुमने आज अपराध किया है, उसका कुछ पराशचित करो; नहीं तो मेरे कलेजे पर बोझ-सा रखा रहेगा।"

"पराशचित? कैसा पराशचित? मैंने कोई दुनिया से अलग काम तो कर नहीं डाला। आख़िर आदमी हूँ, आ गया गुस्सा; पर अब फिर कभी इधर आने का नाम न लेगी, सदा के लिए फंदा

कट गया।"

"बस, तुम्हारी यही बात तो बुरी लगती है। ज़रा-सी देर में रोने को तैयार और ज़रा देर में यह कहने लगे !···तुम्हें पता है, पराई स्त्री पर हाथ उठाना जुर्म है। सरकार की तरफ़ से ऐसा करनेवाले को सज़ा मिलती है !"

"हूँ ! जाय न सरकार में !—देखूँ, कौन-सी फाँसी लगवा देता है !"

"वाह ! मैं कुछ कहती हूँ, तुम कुछ ! तुम्हारा हिरदा तो कहता है—तुमने भूल की, पर तुम इस तरफ़ ध्यान नहीं देना चाहते।"

"......"

"मेरी राय में तुम्हें इसका कठोर पराशचित करना चाहिए, तभी तुम्हारी आत्मा साफ़ होगी और मेरा मन शांत होगा।"

"मैंने जो थोड़ी-बहुत भूल की, उसके लिए घंटों अपने जी को मलामत दे ली। अब और पराशचित क्या रह गया ? कोई जान तो दी नहीं जाती !"

"बात यह है कि तुम्हारी सहनशीलता की जो सब देखने-सुननेवाले वाह-वाह करते हैं, तुम्हारे मन-ही-मन पछतावा करने से वे तो तुम्हारी ग़लती को माफ़ नहीं करेंगे ! और सरूपी के मन में या जेठजी के मन में तुम्हारी तरफ़ से जो बुरे भाव पैदा हो गए होंगे, वे तो दूर नहीं हो जाएँगे !"

"फिर ? क्या किया जाय ?"

"इसका उपाय ख़ुद ही सोचो।"

"मेरी समझ में तो नहीं आता।"

"नहीं आता ?"

"हाँ, नहीं; तुम्हीं बताओ।"

"मैं बताऊँ ?"

"हाँ।"

"बुरा तो नहीं मानोगे ?"

"बताओ तो सही; बुरा मानने से क्यों डरती हो ?"

"मेरी मानो, तो जाकर सरूपी से क्षमा माँग लो।"

"वाह ! वाह ! ख़ूब उपाय बताया ! उस चुड़ैल से मैं जाकर क्षमा माँगूँ ! वह……"

"देखो, सोच-समझकर बात मुँह से निकालो। आख़िर तुम्हारी भाभी है, बड़ी है। कुछ तो लिहाज़ रखो।"

"कोई लिहाज़ रखेगा, तो रखाएगा। तुम तो सतजुग की पैदा हुई हो, मैं पापी तो कलजुग…"

"देखो, फिर बात को कहीं-की-कहीं उड़ा ले गए।"

"हाँ, तो फिर क्या करूँ ?"

"क्षमा नहीं माँगोगे ?"

"किससे ?—सरूपी से ?"

"हाँ।"

"कभी नहीं। मैंने एक स्त्री पर हाथ उठाया है, उसके लिए मेरे मन में जो पछतावा है, उसे परमात्मा जानते हैं। बस, मुझे और किसी की पर्वाह नहीं है।"

"देखो, मान जाओ, इससे तुम्हारी शान घटेगी नहीं, उलटे बढ़ेगी।"

"वाह, मुझे ऐसी शान नहीं बढ़ानी है। मैं…उससे क्षमा माँगूँ !"

थोड़ी देर मौन रहा। फिर दुर्गा ने कहा—"अच्छा, एक काम करो।"

"क्या ?"

"…उसमें कुछ अपमान नहीं है। अपने भाई से क्षमा माँग लो।"

"भाई से ?…इसकी क्या ज़रूरत है ?"

"इसकी जरूरत पीछे मालूम हो जायगी। तुम्हें मेरे सिर की कसम, इस बात के लिए नाहीं न करना।"

"पर इससे होगा क्या ? सिंभू का कुछ अपराध थोड़े ही किया है मैंने, जिसकी क्षमा माँगूँ।"

"नहीं, मैं जैसे समझती हूँ, वैसे करो। तुम्हें मेरी कसम।"

"इससे होगा क्या ?"

"कुछ भी हो, तुम्हें मेरी कसम !"

"…अच्छा, सोचूँगा।"

"नहीं, सोचना-विचारना कुछ नहीं; अभी जाओ।"

"अभी ?"

"हाँ, अभी।"

"वह तो शहर गया है; रात को आएगा।"

"अच्छा, तभी सही।"

× × ×

चिंता और खेद के सपने देखकर सिंभू सुबह उठा। सरूपी उठकर काम-धंधे में लगी हुई थी। सोते से नहीं जगाया—पति के ऊपर इतनी कृपा उसने की, पर उसके जाग जाने पर भी शांत रह जाने की महती कृपा वह न कर सकी। झाड़ू देते-देते बड़बड़ाने लगी।

"जब तक जीना, तब तक सीना। औरत की जात क्या है, जीती रहे, तब तक नौकरानी से भी बुरी—दिन भर धंधे पीटो, सब-कुछ सुनो, ग़ैर मर्दों तक से पिटो—जब मर जाय, तब पैर की जूती; पुरानी उतार दी, नई पहन ली।"

सिंभू पीला पड़ गया। रात की घटना स्वप्न की तरह उसकी आँखों के आगे नाच गई। हा, दुर्भाग्य ! कल सारे दिन का भूखा, रात

भर की बेचैन नींद, और अब सुबह उठते ही लड़ाई का आरम्भ ! बेचारे ने कष्ट से आँखें बंद कर लीं, कुछ देर पत्नी की बड़बड़ाहट सुनता रहा, फिर ऊबकर क्षीण स्वर में कहने लगा—"हे भगवान्, तू एक वक्त रोटी दियो, पर ऐसी स्त्री किसी को नहीं। ईश्वर ! या मुझे उठा ले या इसे। जो स्त्री पति के सुख-दुख का ख़याल किए बग़ैर हर वक्त उसका खून पीने को तैयार रहती है, मैं उसके बिना भी रह सकता हूँ, उसे छोड़कर मरना भी पसंद करता हूँ।"

सरूपी ने सुना, तो सिर से पैर तक जल उठी। झाड़ू डाली एक तरफ़ और क्रुद्ध मुद्रा बनाकर कर्कश स्वर में बोली—"मैं तो ख़ुद परमात्मा से हाथ जोड़ती हूँ, वह मेरा चोला बदल दे, पर क्या करूँ, जब तक आए नहीं, तो कैसे मर जाऊँ ! परमात्मा किसी को ऐसा पति न दे, जो दूसरे मर्दों से अपनी घरवाली को पिटवाकर भी चुपचाप बैठा रहे।"

सिभू के हृदय में क्रोध और विवशता का ऐसा प्रबल बवडर उठ खड़ा हुआ कि कुछ क्षण के लिए वह अपने को भूल गया। मुख की चेष्टा विकृत हो गई, दाँत कट-कट बजने लगे, लड़खड़ाते स्वर में बोलने लगा—"बेहया ! तेरी किस बात का विश्वास करूँ ? अगर तेरी बात सच होने का मुझे विश्वास होता, तो आज इस दुनिया में या तो मैं ही रहता, या तेरे ऊपर हाथ उठानेवाला !"

सिभू का उत्तेजित स्वर सुनकर सरूपी पहले कुछ डरी, फिर उसकी पिछली बात से उत्साहित होकर उसने हाथ नचाकर कहा —"हाँ, तुम्हें क्या मालूम ! जिसके लगती है, वही जानता है। मेरी जैसी दुर्गति हुई है, मैं ही जानती हूँ। हाय ! मैंने तुम पर कैसा भरोसा किया था—आकर यह करेंगे, वह करेंगे। पर तुम तो मेरी बात का बिसवास तक नहीं करते !" यह कहते-कहते वह रो पड़ी।

सिंभू क्या करे ? वास्तव में उसे सरूपी की बात पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। यदि आते ही उसे किसी प्रकार मालूम हो जाता कि रामसनेही ने उसकी स्त्री के प्रति क्या व्यवहार किया, तो शायद भाई के पक्ष में उसके हृदय में कोई तर्क न पैदा हुआ होता। पर सरूपी के निरंतर क्लेश ने एक के सिवा अन्य सभी तर्कों को निरस्त कर दिया।

सरूपी के रुदन का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा। वह कोई कड़ा उत्तर देना ही चाहता था कि इसी समय बाहर से किसी ने द्वार खटखटाया।

सिंभू ने कहा—"कौन है ?"

"मैं हूँ, रामसनेही। ज़रा किवाड़ खोलिए।"

सिंभू और सरूपी दोनों ही चौंक पड़े। रामसनेही क्यों ? सिंभू अभी तक यह निश्चय नहीं कर पाया था कि सरूपी का पक्ष लेकर रामसनेही से किस प्रकार बात करेगा ! कारण यही था कि रामसनेही से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी, जैसा सरूपी ने बताया था। तो भी एक बार उससे मिलकर निश्चय कर लेने का उसका विचार था। अब रामसनेही के ख़ुद आ जाने से मानो मुँह-माँगी मुराद मिली।

"जा, आगल हटा दे।" सिंभू स्त्री से बोला।

सरूपी ने कोई ध्यान नहीं दिया। आँसू पोंछते हुए उसने झाड़ू उठा ली और गर्दन घुमाकर, पीठ फेरकर, आँगन साफ़ करने लगी।

सिंभू ख़ुद ही उठा और आगल खोल दी।

रामसनेही क्या सरूपी की शिकायत करने आया है ? कहीं यह इसके घर कोई और अनर्थ तो नहीं कर आई है ? कहीं अपना अपराध छिपाने के लिए ही तो यह ढोंग नहीं रचे हुए है ? ये विचार

थे, जो खाट से उठकर द्वार तक जाते समय सिंभू के मन में उठे।

रामसनेही ने कहा—"राम-राम, भैया।"

"राम-राम। आओ।"

दोनों भीतर आए। खाट पर बैठ गए। सिंभू ने सरूपी से कहा—"ज़रा चिलम भरियो और गुड़गुड़ी भी ताज़ी कर दीजो।"

रामसनेही को सामने देखकर सरूपी का शरीर क्रोध से काँप रहा था। उसके प्रति पति का यह आदर-भाव देखकर तो उसकी मानसिक अवस्था अद्भुत हो गई। तिस पर पति की यह आज्ञा सुनकर वह पीठ फेरे ज़ब्त न रख सकी। कड़ककर बोली—"जिसने मेरे ऊपर हाथ उठाया, उसकी ख़ातिर करोगे? हुँह! मैं इसकी छाती का ख़ून पिऊँगी!"

सिंभू ने गरजकर कहा—"ज़बान खींच लूँगा, बकबक लगाई तो। चुप रह। चल, जो कहा, वह कर; चिलम भरकर ला।"

इधर क्रोध, अपमान और लज्जा से रामसनेही का चेहरा सुर्ख़ हो रहा था। कहने लगा—"बस भाई सिंभू, रहने दो; मैं इसके हाथ की चिलम नहीं पिऊँगा। सच पूछो, तो मैं यहाँ आकर भी पछता रहा हूँ। मैं आया था किसी और काम से—कोई और बात कहने—पर अब अपनी हेठी कराना नहीं चाहता। अब मैं कहता हूँ—हमारा-तुम्हारा चूल्हा जुदा हुआ, अब आज से आना-जाना, बोलचाल और लेन-देन भी ख़त्म। आज से हम तुम्हारे लिए मर गए, तुम हमारे लिए। (सरूपी की ओर संकेत करके) और इसे मैंने अपने घर में देख लिया, तो कल तो खीर की थाली ही फेंकी थी, अब जूतों से ख़बर लूँगा।"

सिंभू चमक उठा। सरूपी की बात सच है! रामसनेही ने मेरी स्त्री पर हाथ उठाया है! मैंने इसका इतना आदर किया, और इसका बर्ताव यह! मैं इसे अपना समझता हूँ, और यह इस

तरह पेश आता है ! लानत है, ऐसे भाई पर ! धिक्कार है मुझ पर, जो इसकी सुनूँ !! उसने कहा—"देखो रामसनेही, ज़बान सँभालकर बात करो। अगर ताकत का घमंड हो तो मैं भी चून का पुतला नहीं हूँ। याद रखना, स्त्रियों पर हाथ उठाना कोई मर्दूमी नहीं है। तुमने…"

रामसनेही का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था। बात काटकर कहने लगा—"क्या कहते हो, यह स्त्री है ? यह राक्षसी है—राक्षसी ! हम किसी के दबैल नहीं हैं। अमीर की बेटी है, तो हम कुछ भीख माँगने नहीं आते। हमने बड़ी भूल की, जो अब तक सुनी। अब हम नहीं सुनेंगे। किसी की जीभ में ताकत हो, वह जीभ से काम ले, हमारे हाथ-पैर में दम है, हम उनसे काम लेंगे। बस।" यह कहते-कहते वह खड़ा हो गया।

सिभू ने आरक्त नेत्रों से कहा—"रामसनेही, ज़्यादा जोश न दिलाओ। औरतों के झगड़े को इतना तूल न दो। पता नहीं, मैं क्या समझकर ग़म खा रहा हूँ। तुम्हीं थे, जो मेरी औरत पर हाथ उठाकर सही-सलामत हो…"

रामसनेही ने सिभू की पूरी बात सुनने की परवाह न की और दरवाज़े पर से बोला—"ख़ैर, जो तुमसे बने, कर लेना।"

सिभू के मुंह से निकला—"यह घमंड किसी दिन लेकर डूबेगा !"

□□

४

पिछली घटना के आठ दिन बाद की बात है। साँझ होने को थी। सिंभू एक दूसरे गाँव से घर लौट रहा था। अचानक पीछे से आवाज़ आई—"ठाकुर साब, राम-राम !"

सिंभू फिरा। देखा—कुतबी धोबी था। इक्कीस बरस का, सिवा दाँतों के पूरा शरीर घोर काला।

सिंभू ने कहा—"कहो भाई कुतबी, राजी हो ?"

"सब आपकी महरबानी है, ठाकुर साब।"

"अरे भाई, महरबानी तो परमात्मा की है। हम तो संसार में नाचनेवाले मिट्टी के पुतले हैं; एक दिन ठसक लगेगी—फूट पड़ेंगे।"

"हाँ जी, यह बात बिल्कुल सच्ची है। पर तो भी आप लोगों का बहुत सहारा है, आप लोगों की महरबानी भी···।"

सिंभू ख़ुश हुआ। बोला—"यह सब तुम्हारे सील-सुभाव की बात है, नहीं तो हम क्या, सब उस भगवान् की माया है ! ···हाँ, यों तुम हमारे भाई हो, हमारे साथ खेले हो; हमसे जो बने, उसके लिए सदा तैयार हैं।"

"अरे ठाकुर साब, आप लोगों का तो भरोसा है ही ! ऐसा अन्याव तो सहरों में ही···

"कैसा ?"

"अजी, बदमास पैदा हो गए हैं बहुत-से। दस-बीस हिन्दू मिल

गए, दस-बीस मुसलमान मिल गए, झगड़ा हो गया। नतीजा इसका क्या हुआ? हिन्दुओं ने मुसलमानों का बाईकाट किया, मुसलमानों ने हिन्दुओं का। आपस में कसा-कसी बढ़ी, ग़रीबों की रोज़ी मर गई!"

"सचमुच; जाने लोगों की बुद्धि पर क्या पत्थर पड़ गए, जो एक देस का पवन-पानी पीकर सिर-फुटौवल करते हैं। दो-चार बरस पहले तो कहीं ऐसी लड़ाई का नाम भी नहीं था।"

"अजी, असल में लड़ाई तो सरकार कराती है। गांधी जी ने हिन्दू-मुसलमानों को मिलाया, तो सरकार का आसन हिला। उसने सोचा—"हमें इस मुल्क से भागना पड़ेगा, इसलिए आपस में बैर करा दिया। फिर बड़े-बड़ों में रंज बढ़ गया। बस!"

कुतबी की बात सुनकर सिभू को जिज्ञासा हुई। सरकार क्यों लड़वाती है? कैसे लड़वाती है? महात्मा गांधी सरकार को क्यों भगाना चाहते हैं? इत्यादि। परंतु जो आदमी उससे छोटा है, उसके सामने अपनी अज्ञानता प्रकट करने में अपमान समझ, उसने कहा—"सच है, यही बात है।...तो तुम्हारा काम सहर में चला नहीं? अभी एक महीना हुआ, तभी तो तुम गए थे!"

"हाँ, कोई पन्द्रह दिन हुए। बीस रुपए घर से लेकर चला, सब बर्बाद करके आ रहा हूँ। सहर में हिन्दुओं की ज़्यादा बस्ती है। जहाँ गया—सवाल हुआ—हिन्दू हो या मुसलमान? जब कहा—'मुसलमान!' तो कहा गया—'जाओ, मुसलमान को हम कपड़े नहीं देंगे!' बहुतेरा फिरा-फिराया। आख़िर हारकर आज लौट आया।"

"ओफ़्फ़ो! बड़े जुलुम की बात है! अच्छा किया, जो चले आए।"

"हाँ, मैंने सोचा—गाँव में कुछ तो धरम-न्याव है ही। कुछ नहीं मिलेगा, तो मटर सकरकंदी के खेत तो नहीं गए!"

"नहीं जी, मटर सकरकंदी के खेत क्यों ? गाँव चलो, तुम्हारे पेट का इंतज़ाम हम कर देंगे।"

"तुम्हारा तो ठाकुर साव भरोसा ही है।......ताऊ(सिंभू के पिता) की रोटियों पर ही मेरा तो बचपन कटा है। मुझे तो वही बखत याद है।"

"दुनिया में एक-दूसरे का काम इसी तरह निकलता है। हमारे खेत पर एक आदमी की ज़रूरत है। दिन भर वहीं पड़े-पड़े मौज करो। बेफ़िकर रहो, रूखी-सूखी साग-रोटी—जैसी हमारी है—हमेशा तैयार है !"

"मैं तो कहता ही हूँ।...तुम्हारा तो भरोसा ही है...गाँव में फिर भी हिन्दू-मुसलमान का सवाल नहीं है। बात यह है न...।"

"नहीं भाई, ऐसा नहीं है। सहर की चिनगारी आ तो गाँवों में भी पड़ी है। और लच्छनों से तो मालूम भी होता है—गाँवों में जल्दी ही आपस में लट्ठ बजने सुरू हो जाएँगे।"

"नहीं ठाकुर साव, गाँव में अभी ऐसा अन्याव नहीं है।"

"अरे, तुम्हें पता नहीं ?...हाँ, तुम तो सहर गए हुए थे। उस रमसनेहिया ने एक अखाड़ा खोला है...।"

"नूरू उस्ताद से अलग ?"

'हाँ। उसमें हिन्दू-ही-हिन्दू आ सकते हैं। बताओ, है न बैर बढ़ाने की बात ? नूरन मियाँ मुसलमान हैं, इसलिए हिन्दुओं को उनके अखाड़े में नहीं जाना चाहिए। भला हुई कुछ बात ?"

कुतबी को रामसनेही और सिंभू की पिछली लड़ाई का पता नहीं था। वह जानता था, घर अलग होने पर भी दोनों में सगे भाई से ज़्यादा प्रेम है। इस समय सिंभू की ऐसी बात सुनकर वह बड़े चक्कर में पड़ा, फिर सँभलकर सिंभू के दिल की थाह लेने के लिए कहने लगा—"अच्छा ! अलग अखाड़ा खोल लिया ? ठाकुर

तो ऐसे तंग-दिल आदमी थे नहीं ! आख़िर बात क्या हुई ? हनुमान जी की तस्वीर तो नूरन उस्ताद के अखाड़े में भी है ही !"

"......अजी, खाम-खा का झगड़ा मोल लेना है ! यहाँ भी कुछ खाना-पीना लेन-देन है, जो हिन्दू-मुसलमान का सवाल पैदा हो ! अखाड़े में तो ज़रा हाथ-पैर झटकारने जाते हैं, आपस में इसी बहाने साहब-सलामत हो जाती है, मुहब्बत बढ़ जाती है। पर जब चींटी की मौत आती है, या घर में ज़्यादा खूराक इकट्ठी हो जाती है, तो उसके पर निकल आते हैं। पिछले दो साल खेती अच्छी हो गई है, इस साल भी खेत भरे खड़े हैं। शरीर में कुछ वादी भी बढ़ गई है। बस, बन बैठे पहलवान !"

"हाँ, ठाकुर साब, बात तो आपकी सच है। जहाँ दो पैसे गाँठ में हुए कि हड्डियाँ कुलमुलाईं।......आपसे तो अलग ही घर-गिरस्ती है न ?"

"अजी, हमारा ऐसे आदमी से निभाव रखा है ! मरदों से लड़े तो लड़े, औरतों से झगड़ा करे ! भला कोई बात है !"

"बहुत बुरा साब, बहुत बुरा। औरतों से झगड़ा......।"

"हाँ जी, झगड़ा क्या, तुम्हारी भाभी पर एक दिन हाथ तक उठा बैठा !"

"हाथ उठा बैठा ! क्या सच ?"

"हाँ जी ! सच नहीं, तो झूठ ?"

"ठाकुर साब, इतबार नहीं होता। कैसे हाथ उठा बैठा ? कब की बात है ?"

"अभी आठ-दस दिन ही तो हुए !"

"अच्छा ! बड़ा बुरा किया, साब ! बात क्या हुई ?"

"अरे भाई, कुछ बात न बात का सिर-पैर। एक दिन उसकी बहू ने मनोहर के सिर के बाल काट लिए। तुम जानो, औरतों का मन बहमी होता है; वह उससे पूछने चली गई।..."

"किससे ? दुर्गा से ?"

"हाँ।"

"अच्छा; फिर ?"

"बस जी, वह जोरू के गुलाम भी वहीं मौजूद थे, उसके जाते ही खीर भरी थाली उसके मुँह पर फेंक मारी; सारा मुंह झुलस गया। वह तो कहो, अपनी इज़्ज़त बचाकर वह चली आई, नहीं तो पता नहीं, उसके जी में क्या करने की थी !"

"ओफ़्फ़ो ! इतनी हिम्मत ! तुम कहाँ थे, ठाकुर साब ?"

"मैं ज़रा सहर चला गया था। ख़ैर, जो आकर देखा, तुम्हारो भाभी का सारा मुंह जला हुआ ! सब माजरा सुना। तैस तो बहुत आया, एक बार जी में आई, जाकर गँड़ासे से सिर उतार लूँ; बला से फाँसी चढ़ना पड़े पर कुछ सोचकर ग़म खा गया···।"

"वाह, धन्य हैं ! आख़िर बड़े तो बड़े ही रहेंगे !"

"······ख़ैर जी, ख़ून का घूँट पीकर रह गया। तुम्हारी भाभी को समझा-बुझाकर चुप कराया।···"

"फिर ?"

"सुनते जाओ। दूसरे दिन सबेरे-ही-सबेरे आप आ पहुँचे।"

"कौन ?"

"रामसनेही।···आए। मेरी लायकी देखो। औरत पर हाथ उठाया ! पर मैंने विचारा, आख़िर भाई है, फिर घर आए का निरादर नहीं करना चाहिए।—मैंने हुक्का दिया, चारपाई पर बैठाया। पर उसके तो दिमाग़ आसमान पर थे ! उसके जी में तो लड़ने की थी ! आते ही झगड़ना शुरू कर दिया। तुम्हारी भाभी भी वहाँ खड़ी थी। उसे भी कहने में कुछ कसर न रखी, मुझे भी। पर एक चुप सौ को हराती है। हम दोनों ने भी वह चुप्पी साधी, जिसका नाम ! मैंने एक दफ़ा यह तो कहा—'देखो रामसनेही, औरत पर हाथ उठाना बड़ा पाप है।—और जिसमें यह तुम्हारे बड़े

भाई की स्त्री थी, तुम्हारी माँ के बराबर थी !···ख़ैर, किया, सो किया। अब फ़िज़ूल को पित्ता मत उछलवाओ।' बस, और मैंने कुछ नहीं कहा। बकता-झकता आप चला गया।"

"वाह, ठाकुर साब, धन्य है तुम्हें ! इतना ग़म खाना हरएक का काम नहीं है। मैं होता, तो ऐसे आदमी को एक घड़ी जीता नहीं छोड़ता, चाहे पीछे फाँसी क्या—तत्ते चिमटे भी लगाए जाते !"

"अरे, भाई, हमें तो ऐसी ही सिच्छा मिली है। बापू कहा करते थे—'गाली जिस मुंह से निकलती है, उसी को गंदा करती है, अपना कुछ नहीं बिगड़ता।' सो हम तो इसी नीति के आदमी हैं।"

"वाह ! ताऊ भी ताऊ थे ! वाह ! कैसी सीख दी है ! वाह ! जैसा बाप, वैसा बेटा ! धन्य है !!"

"एक तुम क्या—गाँव-गाँव में बापू की तारीफ़ होती है। जब मरे थे, तो बारह गाँवों के किसानों की ही पाँच सौ चद्दर अर्थी पर थीं। सदा सबका भला चाहा। सदा सबसे मिलकर चले। पाँच बरस का बच्चा भी गाली दे, तो भी माथे पर मैल नहीं। क्या बताऊँ, उनके जीते-जी मुझे किसी बात की फ़िकर नहीं थी।"

"परमात्मा की मर्ज़ी है, ठाकुर साब, इतने ग़मगीन क्यों होते हो ! ताऊ वाकई एक आदमी थे ! सदा सबका भला किया। इसी रामसनेही—अपने भाई को ही देख लीजिए···।"

"हाँ, इसी रामसनेही को देख लो ! इसका क्या नहीं किया ? पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया, ब्याह किया, सब लायक किया, जिसका बदला इसने यह दिया है !"

"दुनिया बड़ी खोटी है, ठाकुर साब, बड़ी खोटी है। जिसको आप अपना समझो, वही गर्दन उतारने को तैयार है !"

"ख़ैर जी, 'कर भला हो भला, अंत भले का भला'; अपने राम तो इसी नीति के क़ायल हैं।"

"धन्य है, ठाकुर साब ! तुम्हारे सुभाव को मैं जितनी तारीफ़ करूँ, थोड़ी है।"

"चलो, सब ठीक है।"

"एक बात कहूँ, ठाकुर साब ?"

"एक नहीं—दो।"

"बुरा तो न मानोगे ?"

"नहीं जी, बुरे का क्या काम ?"

"मेरी कसम ?"

"ऐ लो, तुम मेरे बुरे की बात तो कहोगे नहीं, जो बुरा मान जाऊँगा।"

"बात यह है ठाकुर साब—"

"......"

"ऐसे आदमी को कुछ-न-कुछ सज़ा तो ज़रूर मिलनी चाहिए।"

"......"

'समझे, ठाकुर साब ?"

"अरे भाई, समझे सब-कुछ, पर सज़ा देनेवाला तो वही परमात्मा है, जो सब बातों को देखता है। हम कौन होते हैं ?"

"वाह, ठाकुर साब, यह भी एक ही रही। यह बात आपकी ग़लत है।"

"कैसे ?"

"जो आदमी हमसे दुसमनी करता है, उसे सज़ा भी अगर परमात्मा ही देता है, तो हमारे और सब काम भी परमात्मा ही को करने चाहिएँ।"

"हाँ, करता तो है।"

"वाह, क्या रोटी उठाकर हमारे मुँह में डाल देता है ? क्या हमें कपड़े पहना देता है ?"

कुतबी की दलील पर सिभू हँस पड़ा। कहने लगा—"वाह! यह भी कोई बात है!"

"बात कैसे नहीं, ठाकुर साब! परमात्मा ने हमें पैर दिए हैं, चलने-फिरने के लिए; आँखें दी हैं, देखने के लिए; कान दिए हैं, सुनने के लिए; हाथ दिए हैं, दुसमन की ख़बर लेने के लिए…। 'तरह' देने की भी हद होती है। ज़्यादा 'तरह' देने से तो एक की देखा-देखी सब कोई बेजा दबाव डालने लगते हैं। ज़्यादा लिहाज़-मुलाहजा भी ठीक नहीं, चाहे सगा भाई हो, चाहे कोई और! अपना कोई रत्ती भर आदर करे, तुम सेर भर करो। अपने से कोई एक दफ़ा नफ़रत करे, तुम पचास दफ़ा करो। इस असूल पर चलने से ही दुनिया में गुज़ारा है, ठाकुर साब। बखत बुरा है।"

सिभू ने सोचा—बात तो ठीक है। इसका बदला ज़रूर लेना चाहिए। इसके बिना इसकी ऐंठ नहीं जायगी, न शिक्षा मिलेगी।

पर कहे कैसे?

कुतबी सिभू का भाव ताड़ गया। कहने लगा—"ठाकुर साब, होने को रामसनेही तुम्हारे भाई हैं, पर काम उन्होंने ऐसा बेजा किया है, जिसकी जो सज़ा दी जाय, थोड़ी है।"

"……"

"तुम्हारी लायकी की तारीफ़ नहीं की जा सकती, पर ऐसी बेजा हरकत को चुपचाप सह लेना बहुत बुरा है। ओफ़्फ़ो! औरत पर हाथ उठाना! कैसे जुलुम की बात है!"

"……"

"क्या मेरी बात कुछ जँची नहीं, ठाकुर साब?"

"…अरे भाई, जँचे-जँचाए तो सब कुछ; मैं क्या पागल हूँ? पर किया क्या जाय? आख़िर को अपना है, छोटा है; ग़लती हर-एक इनसान से होती है।"

"ठाकुर साब, यह बात तुम्हारी मान सकता हूँ कि किसी की

ग़लती माफ़ कर देना ही बड़प्पन है, पर असल बात तो यह है कि ग़लती करनेवाला जब अपनी ग़लती माने, तब न ! रामसनेही छोटा है, ग़लती हो गई थी, आकर तुमसे माफ़ी माँगता, भाभी के हाथ जोड़ता; चलो बात ख़तम होती। यह सब तो दरकिनार, उलटे आकर लड़ने-मरने पर उतारू हो गया !···सच्ची बात कहने में क्या डर, ठाकुर साब !"

सिंभू थोड़ी देर चुप रहा, फिर कहने लगा—"अच्छा, देखो, तुमने इतनी बातें कहीं और मैंने सुनीं भी, लेकिन मैं उसे इसकी सज़ा देना भी चाहूँ तो क्या सज़ा दूँ ?"

"ठाकुर साब, जब उसने तुम्हारी इज़्ज़त का ख़याल नहीं रखा, तो तुम क्यों उसका मोह करते हो ? मैं तो कहता हूँ, उसने छटाँक भर की चोट मारी, तुम सेर भर की मारो।"

सिंभू न जाने क्यों थरथरा उठा। धीरे से बोला—"नहीं, भाई···।"

"नहीं कैसे ? ठाकुर साब, तुम्हारी भी तो कुछ इज़्ज़त है। ऐसी की तैसी में जाय ऐसा भाई। मैं तो ऐसे भाई की···।"

"अरे भाई, ग़म खाने में ही भलाई है।"

"तुम्हारी बातें सुनकर मुझे बड़ा अचरज हो रहा है, ठाकुर साब ! आप लोगों मे तो औरतों के मामले में सिर कट जाते थे, खून की नदियाँ बह जाती थीं···।"

चोट लगी, और पूरी लगी। सिंभू बोला—"कुतबी, तुम्हारी बातों से बड़ा तैस चढ़ता है, पर करूँ क्या ? लोक-लाज भी कोई चीज़ है। छोटे भाई के खिलाफ़ कोई काम करना मुझे सोभा नहीं देता। अपने मन को तो धोखा दे लूँ, दुनिया को कैसे दूँ ?"

"ठाकुर साब, दुनिया अंधी नहीं है। मैं तो कहता हूँ, तुम्हारे इस 'तरह' दे जाने से चाहे बहुत-से आदमी तुमसे नफ़रत करने भी लगे हों, बदला लेने से तो तुम्हें कोई बुरा कह नहीं सकता।"

"नहीं भाई, मैं सरेआम कोई काम नहीं कर सकता। मैं तो चाहता हूँ, वह जाने या मैं ! उसे शिक्षा मिल जाय, मेरा जी ठंडा हो जाय।"

"बस यही ? यह कौन बड़ी बात है ? कहो तो मूठ छुड़वा दूँ ? किसी को कानों-कान ख़बर भी न हो।"

"हरे-हरे ! नहीं-नहीं, ऐसा नहीं।"

"भाई पर मोह आता हो, तो औरत पर···?"

"हिश् ! एक दिन मरकर परमात्मा के दरबार में भी तो पहुंचना है।"

कुतबी ने अब ज़रा निराश होकर कहा—"तो फिर क्या चाहते हो ?"

"अरे, बदला लेना चाहता हूँ; जान लेना थोड़े ही !"

"तो फिर कैसा बदला ?"

"यही कुछ थोड़ा-सा सबक मिल जाय।"

"···कहो तो रात-बिरात में सिर फुड़वा दूँ ?"

"···नहीं भाई, इसमें भी जान का ख़तरा है।"

"तो फिर क्या ख़ाक बदला लोगे ? सुई चुभा दूँ ?"

"नहीं भाई, नाराज़ न हो। बदला लेना चाहता हूँ, पर ऐसा सख़्त नहीं, जिसमें जान का ख़तरा हो।"

कुतबी उछलकर बोला—"एक बात मेरी समझ में आई है।"

"क्या ?"

"मानो, तो बताऊँ।"

"कहो भी ?"

"(धीरे से) रामसनेही के खेत तो पके-पकाए सूखे खड़े होंगे ?"

सिभू उछल पड़ा। पके, सूखे, दो साल की अच्छी फ़सल। और

हाँ, रामसनेही के खेतों के दोनों तरफ़ सड़क और मैदान। सारी ऐंठ ढीली पड़ जायगी। बोला—

"हाँ, हैं तो!"

कुतबी ने सिभू का भाव जान लिया। कहने लगा— "क्यों, यह कैसा है? एक चिनगारी का काम है!"

"......"

"क्यों?"

"है तो, पर भाई, मेरी हिम्मत इतने की भी नहीं पड़ती।"

"वाह ठाकुर! तुम इसकी फ़िकर मत करो। तुम्हारा तो बस इसारा काफ़ी है!"

"......"

"बस-बस, कहना-सुनना कुछ नहीं! अब देखो, कहाँ इसकी ऐंठ जाती है, और कहाँ अखाड़ा!! आज की रात है, और मैं हूँ!!!"

"अरे नहीं, ऐसो जल्दी नहीं, ज़रा सोच लूँ।" रात को मेरे पास हो जाना।"

"अच्छा।"

"और देखो!"

"हाँ!"

"इस तरह आना कि कोई देखे नहीं। समझे?"

"सब समझता हूँ, बेफ़िकर रहो।"

"ठीक।"

"बस, मैं यहीं से अलग होता हूँ। कोई हम दोनों को साथ न देखे, यही अच्छा है।"

पर कोई आदमी झाड़ी के पीछे था। उसने इनकी पिछली बातें सुन लीं और दोनों को पहचान लिया।

दोनों खिलाड़ी अलग-अलग रास्तों से गाँव में घुसे। □□

५

उस्ताद नूरन का अखाड़ा गाँव में सबसे पहले जागता है। आज वहाँ सुबह से कई पट्ठे अखाड़ा गोड़ने में लगे हैं। उस्ताद जी सदा ही देर से आते हैं, पर आज अपेक्षाकृत कुछ अधिक देर हो गई है।

बात क्या है ?

इतने में एक आदमी अखाड़े में पहुँचा और सबसे दुआ-सलाम की। यह कुतबी था।

बुंदू ने कहा—"कहो भाई कुतबी, शहर से कब लौटे ?"

"कल ही रात को तो। घर पहुँचते ही सुबह अखाड़े में आने का उस्ताद का बुलावा पहुँचा…"

"उस्ताद का ?"

"हाँ जी, मुझे तो एक बार ताज्जुब भी हुआ। मालूम नहीं, उन्हें कैसे पता लग गया, मैं शहर से लौट आया हूँ !"

"लग गया होगा, किसी तरह; मामूली बात है। शायद रास्ते में आते देख लिया हो।"

"मुमकिन है।…हाँ, आज उस्ताद की कुश्ती है ? किससे ……?"

"कुछ कुश्ती न कुश्ती का सिर-पैर यार ! उस बेईमान राम-सनेही ने नया अखाड़ा खोला है न हिन्दुओं का—उसी की ज़रा-ज़रा आँखें खोलनी हैं। उस्ताद भी यार, खाम-खा मज़ाक किया

करते हैं !"

एक दूसरा पट्ठा बोल उठा—"और उसने कुश्ती मंजूर भी तो कर ली !...हड्डी-पसली कुलमुलाई होंगी। हः हः हः हः !"

कुतबी बोला—वाकई यार, उस्ताद भी कभी-कभी बड़ी बेढब दिल्लगी करते हैं। कुश्ती क्या, यों कहो उसे 'ज़ोर कराना' है।"

बुंदू ने लापरवाही से कहा—"क्या 'कुश्ती' और क्या 'ज़ोर', यार—एक चख समझो। कुछ जोड़ भी है? कहाँ शेर, कहाँ बकरी !"

तभी पट्ठे ने कहा—"ताज्जब तो इस बात का है कि उसने मंजूर..."

टूंडू जुलाहे ने कहा—"तुम भी क्या पचड़ा ले बैठे ! कुछ बात भी हो !...कुतबी शहर से आया है, ज़रा इसकी भी तो सुनो; क्या बीती ?...हाँ जी कुतबी, शहर से क्या कमाकर लाए ?"

"कैसा कमाना, यार, बीस रुपये घर से ले गए थे, वह भी ख़तम कर आए !"

"अरे, यह कैसे ? शहर में रोटी-रोज़गार का क्या घाटा ?"

"अरे यार, हिन्दुओं ने मुसलमानों का सारा रोज़ी-रोज़गार ख़तम कर दिया।"

"हिन्दुओं ने; कैसे ?"

"अजी, यही लड़ाई-झगड़ा। हिन्दू अमीर हैं। ग़रीबों की सरकार के यहाँ भी फ़रयाद नहीं है; सब जगह रुपए का ज़ोर है।"

"तो रोज़ी किस तरह...?"

"कहता तो हूँ।...बस, पहले तो..."

बात यहीं रुक गई, क्योंकि दो-तीन पट्ठों के साथ उस्ताद नरुद्दीन का आगमन हुआ।

× × ×

नूरुद्दीन तेली मधुपुर का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। मालदार आसामी था। बचपन से पहलवानी का शौक था। इस समय छत्तीस बरस का था। कसरती बदन, दबंग स्वभाव, रोब-दाब का स्वर। अखाड़े के उस्ताद के सभी गुण उसमें मौजूद थे। इस अखाड़े में हिन्दू-मुसलमान सभी आते थे। एक बार शहर से कुछ मुसलमान वहाँ आए। नूरुद्दीन के घर ठहरे। अखाड़े का भी निरीक्षण किया। सेंदूर से चित्रित हनुमान जी की तस्वीर एक आले में विराजमान थी। शहरी मुसलमानों ने इस पर आपत्ति की। नूरुद्दीन को कुछ ऐसा पाठ पढ़ाया कि अगले दिन उस मूर्ति का लोप कर दिया गया।

हिन्दू पट्ठों को यह बात बुरी लगी। रामसनेही शहर की हवा खाए हुए था। अखाड़े का पट्ठा नहीं था, पर कसरत का शौक रखता था। बचपन में 'लड़ंत' भी काफ़ी कर चुका था। जोशीला जवान था। सुना, तो हिन्दुओं का अलग अखाड़ा खोल दिया।

अलग अखाड़ा खोलने के आठ-दस दिन बाद नूरुद्दीन ने रामसनेही को कुश्ती का चैलेंज भेजा। जोशीले रामसनेही ने चैलेंज स्वीकार कर लिया।

उसी कुश्ती की बात है।

× × ×

उस्ताद आए। दुआ-सलाम हुई। उस्ताद झूमते-झामते आकर बैठ गए। मौका पाकर कुतबी ने भी मुस्कराकर सलाम किया। उस्ताद ने हँसकर कहा—"ओहो, कुतुबुद्दीन भी आ पहुँचे ?"

"वाह, भला उस्ताद का हुक्म होता, और न आता ?"

"हाँ, मैंने तुम्हें रास्ते में देख लिया था।...देखो, दोपहर को ज़रा मेरे पास हो जाना।"

"बहुत अच्छा, उस्ताद। किस वक्त आऊँ ?"

"वही, रोटी खाने के बाद; दोपहर को।···और, हाँ, रोटी घर आकर ही खाना।"

"हाँ-हाँ, रोटी तो उस्ताद की ही खाता हूँ।"

"ख़ैर, रोटी तो सबको वह रब देता है; मगर हर्ज क्या है, वहीं खाना।"

"नहीं, मैं रोटी खाकर हाज़िर-खिदमत होऊँगा।"

"नहीं जी, कह भी दिया। ज़्यादा शान में ही आ रहा है!"

बुंदू ने कहा—"अरे कुतबी, उस्ताद कह रहे हैं; हर्ज क्या है ? उस्ताद तो बाप के बराबर होते हैं।"

कुतबी ने कहा—"मैं दीगर कब कहता हूँ ?···अच्छा, जैसी उस्ताद की मर्ज़ी, जैसा उस्ताद का हुक्म !"

तभी उस्ताद ने कहा—"अभी आया नहीं वह रामसनेही ?"

"बेचारे की हिम्मत कैसे पड़े !" बुंदू ने कहा। सब हँसे।

पर यह अनुमान निःसार ठहरा। बहुत-से गलों से निकली हुई 'महावीर हनुमान की जय' इन लोगों के कान में पड़ी।

"लो, आ गया !" कहकर नूरुद्दीन खड़ा हो गया।

अपने पट्ठों के झुंड में घिरा हुआ रामसनेही आया। बहुत-से दर्शक भी थे। हिन्दू भी, मुसलमान भी।

रामसनेही और नूरुद्दीन की आँखें चार हुईं। रामसनेही ने मुस्कराकर सलाम किया। नूरुद्दीन ने लापरवाही से सिर हिला दिया और मुँह फेरकर थोड़ा हँस दिया।

दोनों पहलवान तैयार हो गए। सिर्फ़ पंचों के आने की देर थी। आदमी दौड़ाए गए।

पंच आए, एक हिन्दू और एक मुसलमान। दोनों वृद्ध, सिर के बाल सफ़ेद, चेहरों पर दृढ़ता और तेज की रेख, आँखों में सौजन्य, सरलता और निष्कपटता, शरीर में पहलवानी की बू

और चाल में गंभीरता।

दोनों आकर बैठ गए। रामसनेही ने हिन्दू पंच के और नूरुद्दीन ने मुसलमान के पैर छुए।

तब दोनों पट्ठे लंगर कसकर, दस-पाँच बैठक और तीन-चार डंड लगाकर, अखाड़े में घुसे। मिट्टी उठाकर चूमी और दोनों ने पंचों की तरफ़ देखकर कहा—"उस्ताद, इजाज़त है न ?"

संकेत हुआ। हाथ मिले। कुश्ती शुरू हुई।

नूरुद्दीन मशहूर पहलवान था। रामसनेही के जीतने की बहुत कम लोगों को आशा थी। पर जब कई मिनट बीत गए और रामसनेही वश में न आया, नूरुद्दीन के सब दाँव सफ़ाई के साथ काटता गया, तो बहुतों को 'बराबर' छूटने की आशा हुई।

पर रामसनेही भारी पड़ता जा रहा था। नुरुद्दीन की साँस फूलने-सी लगी। रामसनेही के पट्ठों ने उस्ताद को बढ़ावा दिया।

नूरुद्दीन पसीने-पसीने हो गया। सारा अहंकार फुर्र ! रामसनेही की पीठ पर 'कैंची' डालकर बैठ गया और दम लेने लगा।

मुसलमान पंच ने ललकारकर कहा—"यह क्या नूरन, बे-असूली बात है ! हटाओ कैंची !"

नूरन लज्जित हो गया। कैंची हटानी पड़ी।

कैंची का हटाना था कि रामसनेही ने नूरन की गर्दन बग़ल में दबाकर कूल्हे का जो धक्का दिया, तो उस्ताद नूरन चारों खाने चित्त अखाड़े में लेटे थे, और रामसनेही उनकी छाती पर !

"महावीर हनुमान की जय !" के निनाद से अखाड़ा गूँज उठा। मुसलमान पंच ने चिल्लाकर कहा—"शाबाश बेटे, जीते रहो। तुम जीते, छोड़ दो।"

रामसनेही खड़ा हो गया। नूरन उठा और हाथ मिलाकर बाहर आया। रामसनेही छाती फुलाए, गर्वोन्मत्त, अखाड़े में खड़ा रहा। उसके पट्ठे जाकर उससे लिपटने और जय-जयकार करने

लगे। रामसनेही ने चिल्लाकर कहा—"बोलो, महावीर हनुमान की जय ! ग़रूर का सिर नीचा।"

चारों तरफ़ से आवाज़ आई—"ग़रूर का सिर नीचा !"

हिन्दू पंच ने ललकारकर कहा—"ख़ामोश ! क्या वाहियात बकते हो !!"

नूरुद्दीन की क्रोधाग्नि में घी पड़ गया। हिन्दू पंच की डपट उसने काफ़ी न समझी। रामसनेही के सामने आकर कहा—"अबे अनाड़ी ! क्या बकता है तू ! इसमें ग़रूर का क्या सवाल है ? यह तो दाँव है—पासा पड़े, अनाड़ी जीते !...बेईमान, तुझे शर्म नहीं आती !"

रामसनेही ने कुछ न कहा; मुँह फेरकर मुस्करा दिया। पर उसके एक पट्ठे से न रहा गया। तमककर बोला—"मियाँ, ज़बान सँभालकर बात करो। शर्म आए तुम्हें ! बने फिरते हैं पहलवान कहीं के !"

क्रोध से काँपता हुआ नूरन उस छोकरे की बदज़बानी का मज़ा चखाने के लिए उसकी तरफ बढ़ा, पर कहनेवाला ग़ायब हो चुका था !

इतने में उसके कई पट्ठों ने नूरन को पीछे खींच लिया।

नूरन ने पीछे हटते हुए सक्रोध कहा—"सालो, एक-एक को मज़ा न चखाया, तो नाम नूरुद्दीन नहीं !"

एक आवाज़ आई—"वह 'नाम नूरुद्दीन' ही तो अखाड़े में लंबा लेटा हुआ था ! बोलो, नूरुद्दीन की फुर्र !!"

नूरुद्दीन का बस चलता, तो रामसनेही को उसके पट्ठों-समेत कच्चा चबा डालता ! पट्ठों के समझाने-बुझाने से हटा और क्रोध, अपमान, क्षोभ और दुख से जर्जरित, कपड़े पहनने लगा।

रामसनेही और उसके पट्ठे हँसते-कूदते, चिल्लाते चले गए।

टूँडू ने कहा—"अजी, वह कैंची लेकर उस्ताद ने ऐसी बढ़िया

फाँस लगाई थी कि मुन्ना वहीं टिमाटर हो जाते ! वह तो मीर साहब के कहने से…"

बुंदू ने कहा—"अजी, देखो तो, एक-एक साले की अकल दुरुस्त कर दूँगा। उस्ताद का इशारा होता, तो इस रामसनेही की तो यहीं बक्कल उधेड़ देता !"

नूरन ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"सब सालों को गोली से उड़ा देना चाहिए।"

एक महाशय बोले—"अजी, यह भी कोई कुश्ती थी ! किसी दिन मैदान में इस साले रामसनेही को मैं ललकारूँगा; उस्ताद की बात दूर है !"

कुतबी भी जोश में आ रहा था। चिल्लाकर बोला—"इस रामसनेही को मैं ग़ारत करूँगा ! वक्त नज़दीक है !"

इस निश्चय में क्या था, और होना क्या था—यह कौन जाने !

नूरुद्दीन ने चौंककर कुतबी की तरफ़ देखा और कहा—"कुतबी, दोपहर को रोटी घर ही पर खाना; भूलना मत !"

□□

६

दुर्गा आँगन में बैठी थी। बालक घनश्याम सामने खेल रहा था। अचानक माँ ने पुकारकर कहा—"अरे, घनश्याम रे!"

बेटे ने खेल से मन हटाकर माँ की तरफ़ मुँह फिराया। माँ बोली—"अरे, अब मनोहर कहाँ रहता है ? तुझे कभी मिलता है या नहीं ?"

घनश्याम ने अपने बालसुलभ स्वर में उत्तर दिया—"उस दिन जो लड़ाई हो गई थी, उसके पीछे एक दफ़ा मिला था !"

"फिर ?"

"जब मैंने पूछा—'अब घर खेलने क्यों नहीं आते ?' तो उसने कहा—'माँ ने मना किया है। अब हम तुम्हारे घर नहीं आएँगे; न तुम्हारे साथ खेलेंगे। न तुमसे बोलेंगे।' फिर मुझे वह नहीं मिला।"

"तूने पूछा नहीं, क्यों नहीं आएगा ?"

"पूछा था।"

"फिर क्या कहा ?"

"कहने लगा—'काका ने हमारी माँ को पीटा है, इसलिए हम तुम्हारे घरवालों से नहीं बोलेंगे।' क्यों माँ, सचमुच काका ने ताई को मारा था ?"

दुर्गा बुद्धिमती थी। बच्चों के कोमल हृदय पर वह किसी विषम भावना की छाप लगाना नहीं चाहती थी। ऐसी स्थिति में

उसने झूठ बोलना बुरा न समझा—"नहीं भैया, यह सब झूठ बता है। भला कहीं मरद औरतों को पीटा करते हैं ?"

"तो माँ, क्या मनोहर झूठ बोलता था ?"

"नहीं, किसी ने उसे बहका दिया होगा।"

"ओ हो ! यही बात है।"

थोड़ा ठहरकर दुर्गा ने कहा—"अब की मिलो तो उसे मनाकर अपने साथ यहाँ लाना !"

घनश्याम अपने खेल के कीमती वक्त को बातों में खोना नहीं चाहता था। उसने संक्षिप्त उत्तर दिया—"अच्छा !"

× × ×

दूसरे दिन

"अरी, माँ री !"

"हाँ !"

"मनोहर मुझे मिला था।"

"फिर ?"

"मैंने बहुतेरा मनाया। पहले तो आने को राज़ी ही नहीं हुआ। कहने लगा 'तुम्हारे बापू ने हमारी माँ को पीटा है। तुम्हारी माँ हमें मार डालेगी। हम तुम्हारे घर कभी नहीं जाएँगे।' आख़िर जब मैंने बहुत कहा, तो कहने लगा—'अच्छा, आज माँ से पूछेंगे; उसने कह दिया, तो कल तुम्हारे यहाँ चलेंगे।' बस, मैंने······"

"अरे, पागल ! यह क्या किया ?"

"क्यों ?"

"अरे, जा, दौड़ा-दौड़ा जा; जो अभी वह बाज़ार में ही खेल रहा हो, तो उससे कहा आ—'माँ से कहने की ज़रूरत नहीं है। डरने की कोई बात नहीं है। माँ को ख़बर नहीं होगी। चल, चाची

बुला रही है।' जा, भाग जल्दी !"

घनश्याम बड़ी उमंग से अपनी अर्द्ध सफलता माँ को सुनाने आया था। पर माँ का ऐसा व्यवहार देख उसकी उमंग ठंडी पड़ गई। बेचारा उलटे पाँव दौड़ा।

इधर दुर्गा ने सोचा—सरूपी का कैसा ख़राब दिमाग़ है ! अव्वल तो देवरानी-जिठानी की लड़ाई ही क्या ! और जो हो भी, तो बालकों से उस लड़ाई का क्या सम्बन्ध ! अभी से इन बालकों के जी में द्वेष और शत्रुता का भाव भर देना कहाँ की बुद्धिमानी है ? पता नहीं, विधाता ने इसे कैसा सुभाव दिया है !

घनश्याम मुँह लटकाए लौट आया। आकर बोला—"मनोहर तो कहीं नहीं मिला; शायद घर ही गया होगा, माँ से पूछने।"

दुर्गा ने चिल्लाकर कहा—"क्यों रे ! मैंने तुझसे कब कहा था कि तू उसे माँ से पूछने जाने दीजियो ?"

दुर्गा का प्रश्न बड़ा बेढंगा था। बच्चा घनश्याम उसका क्या उत्तर दे ?

दुर्गा भी अपने प्रश्न की निस्सारता समझ गई। क्षुब्ध होकर बोली—"जा, यहाँ से ! मूर्ख !"

घनश्याम हट गया। उसके हृदय में जिस जिज्ञासा, जिस अपमान और जिस क्रोध का तूफ़ान उठा, वह वही जाने। पर माँ-बाप के सामने उद्दंड होने की न उसे शिक्षा मिली थी, न हिम्मत पड़ी।

जब थोड़ी देर में दुर्गा यह बात भूल गई, तो घनश्याम ने मौका पाकर माँ से पूछा—"माँ, क्या हर्ज हो गया ?"

"कैसा हर्ज ?"

"मनोहर अपनी माँ से पूछने चला गया, तो क्या हर्ज हो गया ?"

"नहीं बेटा, इस बात को वहाँ तक पहुँचाने से कोई फ़ायदा नहीं था।"

बालक कुछ देर चुप रहा। फिर डरते-डरते बोला—"अच्छा, माँ, एक बात बताओ।"

"क्या ?"

"सच बताओगी ?"

"क्या ?"

"मेरी कसम खाओ।"

"नहीं बेटा, कसम नहीं खाया करते।"

"माँ, काका ने क्या सचमुच ताई को पीटा था ?"

दुर्गा का मुँह सफ़ेद हो गया। कहने लगी—"नहीं तो, तुझसे कहा तो था।"

"अच्छा, तो फिर मनोहर ताई से पूछे तो क्या हर्ज है ?"

बच्चे का तर्क देखकर दुर्गा दंग रह गई। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए मन-ही-मन कहने लगी—वाह ! आख़िर है तो मेरा बेटा ही, क्यों न हो !...मेरा बेटा भारी बुद्धिमान् होगा !

पर भाग्य खड़ा हँसता था !

बेटे ने फिर पूछा—"हाँ माँ, बताती क्यों नहीं ?"

"क्या बताऊँ ?"

"यही।"

माँ को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था।

इसी समय बाहर से शोर-गुल की आवाज़ आई। घनश्याम के कान खड़े हो गए। पहली जिज्ञासा लुप्त हो गई और शोर-गुल का कारण जानने के लिए वह पलक झपकते माँ की गोदी से फुर्र हो गया।

थोड़ी देर बाद झूमते-झामते रामसनेही ने घर में प्रवेश

किया। घनश्याम भी बाप की उँगली पकड़े किलकारी मारता और उछलता आ रहा था। रामसनेही ने दूर से ही कहा—"ले खिला मिठाई; मारा नूरन को !"

घनश्याम ने भी पिता की बात दुहराई—"ले खिला मिठाई; मारा नूरन को !"

दुर्गा ने सिर का पल्ला नीचा कर लिया और बेइख़्तियार मुस्करा पड़ी। उसके सुख की तोल करना हमारे बस का काम नहीं !

× × ×

रोटी खाकर कुतबी और नूरन आमने-सामने बैठे।

पहले नूरन ने बात चलाई—"हाँ भई, यह तो बताओ, सिंभू ने रात को क्या कहा ?"

कुतबी का चेहरा फ़क् ! "सिंभू ने ?" सिंभू की बात इन्हें कैसे मालूम हुई ?

नूरन हँसा। कहने लगा—"भाई, गाँव में पत्ता खड़कता है, तो मुझे पता चल जाता है। मुझे सब मालूम है। ···हाँ, क्या कहा सिंभू ने ?"

"···मगर उस्ताद, आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"फिर वही। अरे भाई, तंत की बात है कि मुझे गाँव में पत्ता खड़कने तक की ख़बर रहती है। बताओ, क्या सलाह हुई रात को ? ···बुलाया था न तुम्हें उसने ?"

कुतबी ने आत्मसमर्पण कर दिया; कहा—"उस्ताद ! मानता हूँ तुम्हें। ···लो, तुमसे क्या छिपाव है ! बात यह थी कि कल मैं शहर से लौट रहा था, तो सिंभू मिल गया।"

"फिर ?"

"उसने बातों-बातों में ज़ाहिर किया कि रामसनेही ने उसकी

औरत पर हाथ उठाया, इससे दोनों में रंजिश-सी हो गई है। बस, मैंने सोचा—इन दोनों की लड़ाई से फ़ायदा उठाया जाय।"

"ठीक। फिर ?"

"आपसे क्या छुपाना उस्ताद; मैंने उसे रामसनेही के ख़िलाफ़ भड़काया !"

"ख़ूब किया।"

"हाँ, मैंने कहा—'तुम्हें इसका बदला लेना चाहिए।' आप जानते हैं, यह सिभू है तो चौहान, पर निहायत बुज़दिल है। बहुत ऊँच-नीच समझाने से आख़िरकार मेरी राय पर रज़ामंद हुआ।"

"क्या राय थी ?'

कुतबी ने उस्ताद के पास सरककर धीरे से कहा—"मैंने कहा—इस साले रामसनेही के खेत में आग···। तुम्हारी हिम्मत न हो, तो मुझसे कहो, सब काम ठीक···।"

"राजी हो गया ?"

"हाँ, एक दफ़ा तो राजी हो ही गया था; पर बड़ी मुश्किल से।···लेकिन जब गाँव नज़दीक आ गया और हम दोनों जुदा होने लगे···"

"···तो उसने कहा—'ज़रा रात को मेरे पास हो जाना।' क्यों ?"

कुतबी ने अचरज से कहा—"ठीक है उस्ताद, यही कहा था। तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"फिर वही बच्चापन। बीस दफ़ा कहा—पत्ता खड़कने तक की ख़बर यहीं बैठे पा लेता हूँ। समझे ?"

नूरन यह कहकर मूँछों पर ताव देने लगा।

कुतबी ने भक्ति-भाव से उस्ताद के पैर छुए और हाथ जोड़कर कहा—"वाह वा ! वाह ! क्यों न हो ! आख़िर उस्ताद उस्ताद

ही हैं !!"

नूरन ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, बस यार। बहुत तारीफ़ हो ली। पहले बात तो ख़त्म करो···तो रात को तुम सिभू के घर गए ?"

"क्यों नहीं जाता, उस्ताद ? जानते हो, मुझे तो लौ लगी हुई थी— कैसे इन दोनों की भिड़ंत हो, और कैसे रामसनेही का नास हो।"

"ठीक है, ठीक है, क्यों न हो ! शाबाश !!"

"शाबाशी की क्या बात है, उस्ताद ! आप जानते हैं—मैं तो अपनी ज़िंदगी आपकी ही नज़र समझता हूँ। मेरा क्या है—आगे नाथ न पीछे पगहा— जो ख़िदमत हो जाय···"

"···ठीक है; हाँ, तो तुम रात को गए, तो क्या तय पाया ?"

"कुछ नहीं उस्ताद, सब किया-कराया फ़िजूल हो गया। बड़ा डरपोक, बुज़दिल निकला···"

"क्या ! इनकार कर दिया ?"

"हाँ जी, बहुतेरा समझाया, बहुतेरी ऊँच-नीच सुझाई, पर वह बंदा टस-से-मस नहीं हुआ !"

"क्या कहने लगा ? आख़िर कोई बहाना बनाया भी होगा !"

"अजी, बहाना क्या ! कहने लगा, रामसनेही मेरा भाई है, अगर उसने बेवकूफ़ी की, तो मैं बेवकूफ़ी नहीं करूँगा। मेरा और उसका चोली-दामन का साथ रहा है।···उसने मुझ पर हज़ारों तरह के एहसान किए हैं।"

"धत्त रे बुज़दिल की दुम में रस्सा !···तो तुम्हारी बात नामंज़ूर कर दी ?"

"कतई नामंज़ूर जी। मैंने तो कहा था—'इशारा करना तुम्हारा काम। काम करना मेरा काम।' इस पर भी राजी न हुआ।"

"ओफ़्फ़ो ! कैसे-कैसे दो कौड़ी के आदमी दुनिया में मौजूद हैं !!"

"क्या कहूँ, उस्ताद, तैश तो मुझे भी बहुत आया, पर कर क्या सकता था !"

"ठीक है जी, तुम क्या कर सकते थे ? लड़ाई तो उसी की थी, तुम्हारी थोड़े ही ?"

"बस, उस्ताद, लाचार होकर, मन मारकर चला आया।"

"मगर कुतबी, इस बदमाश को मज़ा तो ज़रूर चखाना चाहिए।"

"किसे ? सिंभू को ?"

"नहीं, रामसनेही को।"

"हाँ उस्ताद, ख़याल तो मेरा भी ऐसा ही है···! और, आज सुबह से तो मैं इसकी जान का दुश्मन हो गया हूँ।"

"तो तुम्हारी समझ में इसे क्या सज़ा देनी चाहिए ?"

"देखो उस्ताद !" कुतबी ने दार्शनिकों का-सा तर्कपूर्ण उत्तर दिया—"सज़ा सज़ा है, चाहे वह रत्ती भर हो, चाहे सेर भर। सज़ा देने से कुछ सज़ा देनेवाले का फ़ायदा तो होता ही नहीं; मतलब तो सिर्फ़ इतना होता है कि उस पर यह ज़ाहिर हो जाय कि देख, हमारी हैसियत को पहुँचने को तेरी बिसात नहीं है। हम बड़े हैं, तू छोटा है। हममें तुझे सज़ा देने की ताकत है। इसलिए सज़ा जरूर मिलनी चाहिए—चाहे वह भारी हो या हल्की !"

नूरन कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला—"मेरी समझ में ऐसे ख़तरनाक आदमी को ज़िंदा नहीं रहने देना चाहिए। क्यों !"

क़ुतबी चौंका। बोला—"मगर सज़ा बहुत सख्त है !'

नूरन मुस्कराया—"हाँ, है तो। फिर ?"

"सज़ा इससे हल्की होनी चाहिए।"

"तो फिर जो तुम्हारी ख्वाहिश है, वही सही।"

"मेरी क्या ख्वाहिश···?"

"यही कि खेत में···।"

कुतबी का चेहरा खिल उठा। बोला—"उस्ताद, तुम्हारी शह है ?"

नूरन मुस्कराया।

"बस, ठीक है उस्ताद, करना मेरा काम; बचाना आपका काम!"

"पागल है! यह भी कहने की बात है?"

"उस्ताद, मुझे तो तुम्हारा ही भरोसा है।"

नूरन ने बड़प्पन की लापरवाही से कहा—"बस, हो गया! ज़्यादा तारीफ़ के पुल नहीं बाँधते हैं। जा ख़ुदा का नाम लेकर चखा दुश्मन को मज़ा!"

कुतबी ने आख़िरी बात कही—"बात यह है उस्ताद, अभी तो मामूली-सा धक्का लगाकर इसकी आँखें खोल दी जाएँ। इसके बाद भी अगर अक्ल दुरुस्त न हो, तो देखना—मेरी लाठी होगी और उसका सिर!"

नूरन ने कहा—"ठीक कहा! ठीक कहा! शाबाश! जाओ, देखें कैसी खूबी से अपना काम सरंजाम देते हो! जाओ, शाबाश!"

नूरन ने यह कहकर कुतबी की पीठ ठोंक दी। कुतबी चला गया, तो ज़रा देर बाद ही नूरन का चेहरा सुर्ख़ हो गया, आँखें जलने लगीं। होंठ काटते हुए आप-ही-आप बोला—"साला, बद-नसीब! जल में रहकर मगरमच्छ से बैर करने चला है!"

□□

७

कुतबी जब सिभू के घर से नाकाम लौटा और सिभू दरवाज़ा बन्द करके कोठे में आया, तो सरूपी ने कड़ककर कहा—"तुम मरद हो?"

"क्यों?"

'तुम्हें सरम नहीं आती! सारा गाँव तुम पर थू-थू कर रहा है और तुम्हारे कान पर जूँ नहीं रेंगती! एक ग़ैर आदमी इतनी मदद देने को तैयार है, फिर भी तुममें उस चांडाल से बदला लेने की हिम्मत नहीं है!"

"हिश्···पगली···!"

"बस, जीभ सँभालकर बात करो! ऐसी-ऐसी सुनकर भी तुम मुझे मुँह दिखाने चले आए! कुतबी ने इतना कहा, तो भी न पसीजे! धिक्कार है तुम्हें, अपने बड़ों के नाम को कलंक लगा दिया!"

"देख, कहता हूँ—चुप रह!···इसकी बातों में आकर भाई का गला काट देता, तो कलंक नहीं लगता क्या?"

"बस, ज़्यादा बकवाद मत करो। देख ली तुम्हारी बहादुरी!"

"ज़्यादा ज़बान चलाई, तो नाक काट लूँगा; आई समझ में?"

"आ, मरे, देखूँ कैसे नाक काटता है!"

सिभू ने आगे बढ़कर सरूपी की चोटी पकड़ ली और घसीटता

हुआ कोठे के बाहर आया। बाँस का डंडा उठाकर अंधाधुंध उसे पीटने लगा।

सरूपी हाय मरी ! हाय मरी ! कहकर चिल्लाने लगी।

मारते-मारते जब सिंभू के हाथ दुख गए, तो डंडा उसने परे फेंका, सरूपी को चौक में छोड़ा और कोठे में घुसकर किवाड़ बंद करके सो रहा।

रात को ज़ोर की बारिश हुई, फिर हवा चलने लगी। सरूपी बेहोश चौक में ही पड़ी रही। वर्षा और पवन उस पर अपना हमला कर गए, सिंभू ने रात भर कोठे का दरवाज़ा न खोला।

सिंभू सुबह कोठे से बाहर आया, तो सरूपी को अस्त-व्यस्त दशा में चौक में पड़ी पाया। एक बार धक् से रह गया। उसे आशा थी कि बारिश होने पर वह दालान में आ गई होगी। चैत का महीना था, बारिश का कोई डर था नहीं ! उसने सोचा था, इतनी मार और रात भर को जाग, सरूपी को महीना-दो-महीना शांत रखने को काफ़ी होंगी।

पर अब—अपनी आशा के प्रतिकूल—उसे चौक में बेहोश पड़े देखा, तो उसे बड़ी चिंता हुई। पास जाकर पुकारा—"सरूपी ! सरूपी ! !"

जब उत्तर न मिला, तो उसने बड़ी मुश्किल से पत्नी की अवसन्न देह उठाकर चारपाई पर डाली और कपड़ा उढ़ाकर सिरहाने बैठ गया।

"......"

किसी की पुकार सुन पड़ी। सिंभू बाहर आया। कोई किवाड़ों में धक्का मार रहा था, सिंभू सरूपी का नाम ले-लेकर पुकार रहा था। सिंभू ने पहचाना, पड़ोस की विधवा ब्राह्मणी भगवान-देई थी। उसने जाकर दरवाज़ा खोला। बूढ़ी भगवानदेई भीतर आकर बोली—"क्या हुआ रे, क्यों मारा रात बहू को ?"

सिभू दुःखी होकर बोला—"चाची, जान पड़ता है, मेरे बुरे दिन आ गए।"

सिभू यह कहकर रोने लगा।

भगवानदेई ने मैले अंचल से सिभू के आँसू पोंछे, पुचकारकर बोली—"क्यों बेटा, क्या हुआ? पागल कहीं का! मर्द होकर रोता है। बहू कहाँ है? और लड़का कहाँ है?"

सिभू ने कुर्ते से आँसू पोंछते हुए कोठे की ओर संकेत कर दिया।

भगवानदेई कोठे में घुस गई। सिभू भी पीछे-पीछे गया। भगवानदेई ने ज़रा सा लिहाफ़ हटाया और पुकारा—"सरूपी? बेटी सरूपी!!"

सरूपी ने क्षीण स्वर में कहा—"हाँ!"

"कैसा जी है, बेटी?"

"चाची, मरने को पड़ी हूँ; बचूँगी नहीं।"

"पगली है।" भगवानदेई ने लिहाफ़ ढँक दिया और सिभू से बोली—"हाँ रे, क्या हुआ?"

सिभू आंखें पोंछता रहा। कोई उत्तर उसे न सूझा। इतने में उसकी खाट पर सोया हुआ बच्चा रोया। भगवानदेई ने उसे चुप कराते हुए सिभू से कहा—"हाँ रे, क्या हुआ! बोलता क्यों नहीं?"

सिभू फिर भी कुछ न बोल सका। तब भगवानदेई उसका हाथ पकड़े बाहर आई और कहने लगी—"क्या बात हुई रे. मुँह से तो बोल!···क्या बहुत मार बैठा?"

"क्या कहूँ, चाची! मैं मर जाऊँ, तो सब झगड़ा मिट जाए!"

"पागल हुआ है! घर-घर मटियाले चूल्हे हैं! लड़ाई-झगड़ा किसके घर में नहीं होता?···बता तो सही, ज़्यादा मार-पीट कर बैठा क्या?"

सिभू मुँह से कुछ न कह सका, पर भगवानदेई ने अपने प्रश्न का उत्तर उसका मुँह देखकर पा लिया। बेचारी ने उसी वक्त आग जलाकर हल्दी-चूना गरम किया और सिभू से बोली—"तू लड़के को लेकर ज़रा बाहर चला जा। मैं···"

बात समाप्त होने के पहले ही सिभू चला गया। घर से निकलकर थोड़ी दूर गया होगा कि किसी ने पीछे से कहा—"सिभू भैया, कहाँ चले ?"

बलदेव उसी की बिरादरी का था और समवयस्क भी। सिभू ने कहा—"कहीं नहीं, यों ही ज़रा घर से निकल आया। राजी तो हो ?"

'हाँ, सब तुम्हारी दया है। क्या नूरन के अखाड़े की तरफ़ चल रहे हो ?"

"नहीं तो; क्यों, वहाँ क्या है ?"

"अरे ! तुम्हें पता नहीं ? आज रामसनेही और नूरन की कुश्ती है।"

"कुश्ती है ?"

"हाँ, सारे गाँव में परसों से यही चर्चा है। तुम्हें पता नहीं ? ···अच्छा, अब तो पता हो गया। चलते हो कुश्ती देखने ?

"नहीं भाई, मुझे कुश्ती लड़ना और देखना कैसे सूझे···!"

"क्यों ? क्यों ?"

तुम्हारी भाभी बीमार है। उसी झंझट में पड़ा हूँ।···अच्छा, राम-राम, जाता हूँ। बहुत देर हो गई, तुम जाओ, देखो कुश्ती···।"

सिभू बच्चे को गोद में लिए हुए वापस घर को चला। रास्ते में सोचने लगा—एक रामसनेही है, जो खाता-पीता है, मौज करता है। एक मैं हूँ, खाता भी हूँ, पीता भी हूँ और रात-दिन मुसीबत में गिरफ़्तार रहता हूँ। किसी बात में रामसनेही से कम

नहीं हूँ, तो भी मेरा जीवन उसके मुकाबले में कितना दुःखपूर्ण है ! क्यों ? मन में यह प्रश्न उठा, तो सरूपी और दुर्गा का स्वभाव उसके सामने आ गया।

सिभू आप-ही-आप बोल पड़ा—"अच्छा है, मरे भी कम्बख्त, एक मुसीबत दूर हो !"

घर में घुसा। भगवानदेई आहट पाकर हल्दी-चूने की खाली कटोरी लिए कोठे से बाहर आई। कहने लगी—"सिभू, तूने बड़ा बुरा किया। ऐसी निर्दयता से गाय-भैंस को भी नहीं मारा जाता। बेचारी की हड्डी-हड्डी कसक रही है। पराई बेटी पल्ले बाँधी है, तो क्या इस तरह उसकी जान लेने के लिए ?"

सिभू कुछ कच्ची-पक्की कहने को हुआ, पर चाची का बहुत अदब करता था; चुप रह गया।

चाची ने कहा—"कमर और छाती में बड़ी चोट आई है, दोनों हाथ सूज गए हैं। जाँघों पर मोटे-मोटे नील पड़ गए हैं। तकलीफ़ के मारे बोला नहीं जाता है।...तूने बड़ा गजब किया।"

सिभू चुप ! मानो मानता है, उसने बड़ा गजब किया !

चाची ने कहा—"जा, देख, ज़रा उसे ढाढ़स दे, बेचारी तभी से रो रही है !"

सिभू एक बार जाने को हुआ, फिर शरमाकर कहने लगा—"चाची, तुम्हीं जाओ, तुम्हारे सामने ढाढ़स-वाढ़स देना मेरा काम नहीं।"

चाची ने झिड़ककर कहा—"अरे, अदब-क़ायदा तो पीछे हो जायगा, पहले जाकर उसे देख तो ले। जा, जल्दी जा।"

सिभू कोठे में गया। स्त्री की खाट के पास जाकर पुकारा—"मनोहर की माँ !"

सरूपी ने कुछ जवाब न दिया।

सिभू ने पतली चद्दर ज़रा-सी हटाई। सरूपी 'हाय' कह

उठी ! सिंभू ने धीरे से कहा—"कैसा जी है ?"

कुछ उत्तर नहीं।

तीसरी बार वही प्रश्न किए जाने पर सरूपी ने लम्बी साँस ली और रोते हुए क्षीण स्वर में कहा—"बस, अब तो अगले जनम में जी पूछना।"

सिंभू के हृदय में मानो किसी ने ज़ोर से चुटकी भरी ! कुर्ते से आँख पोंछते हुए कहने लगा—"क्या बात है ? कैसा जी है ?"

सरूपी ने ज़ोर से 'हाय' की, और कहा—"बस, अब न बचूंगी। तुमने जो कुछ किया, अच्छा किया !"

सिंभू ने घबराकर कहा—"क्या हकीम जी को बुलाऊँ ? ज़्यादा लग गई ?"

सरूपी ने कहा—"नहीं, हकीम जी क्या करेंगे ! मैं अब न बचूंगी ! ज़रा मनोहर को दिखा दो।"

सिंभू ने बाहर आकर भगवानदेई से कहा—"चाची, ज़रा मनोहर को उसके पास ले जा।"

चाची ने हल्दी-चूने की एक कटोरी तैयार कर ली थी। मनोहर को साथ लिए भीतर चली गई।

सिंभू बहुत देर तक बाहर दालान में बैठा रहा। कभी अपने आपको धिक्कारता था, कभी रामसनेही पर दाँत पीसता था और कभी सरूपी पर ही सारा दोष मढ़ता था।

भगवानदेई ने बाहर आकर धीरे से कहा—"सिंभू ! बहू को चोट बहुत ज़्यादा आई है। परमात्मा खैर करे !"

सिंभू ने घबराकर कहा—"क्या करूँ, चाची ? श्यामपुर से हकीम जी को लाऊँ ?"

भगवानदेई ने सँभलकर कहा—"हाँ-हाँ, उन्हीं को ला…। बहू बचानी है, तो दौड़-धूप करके बचा ले !"

सिंभू ने चादर कन्धे पर रखी, लाठी उठाई और उसी दम

चल दिया। श्यामपुर चार कोस था। सिंभू नाना प्रकार की चिन्ताओं में डूबता-उतराता, तेज़ी से चलता हुआ पहुँचा। श्यामपुर के हकीम जी चारों तरफ़ के गाँवों में खूब प्रसिद्ध थे। सिंभू हकीम जी के घर पहुँचा, तो यह सुनकर उसकी निराशा की हद न रही कि हकीम जी एक दूसरे गाँव में किसी रोगी को देखने गए हैं।

हारकर वहीं ठहर गया। कई घंटे बैठना पड़ा। हकीम जी दोपहर को लौटे। सिंभू ने अपनी विनय सुनाई।

हकीम जी भूखे और थके थे। झटपट खाने से निपट, दवाओं का टीन सिंभू के सिर पर रखकर उसके साथ चले।

रोगी को देखा। बुरी हालत थी। सरूपी बेहोश थी और बक-झक कर रही थी। शरीर पर जगह-जगह चूना पुता हुआ था और चेहरा खून से भीगा था। खाट के नीचे रखा हुआ मिट्टी का पात्र खून से भरा हुआ था।

सिंभू भय से रोमांचित हो उठा।

"तुम्हारे जाने के बाद इसे कई बार खून की क़ै हुई। भगवान-देई ने सिंभू को उस खून का रहस्य समझाया। मुँह से एक स्पष्ट 'हाय' निकली।

हकीम जी ने सब-कुछ देखा-पूछा, फिर सिंभू से धीरे से कहा —"ज़ालिम, तूने इसे मार डालने में कोई क़सर नहीं रखी है!"

सिंभू सिर झुकाए खड़ा रहा।

हकीम जी कुछ देर सोचते रहे, फिर बाहर जंगल से किसी पेड़ की पत्ती लाने को कहा।

सिंभू कठपुतली की तरह घर से बाहर हुआ। सामने से कुतबी आ रहा था। उसने पुकारकर कहा—"ठाकुर साब, किधर चले?"

सिंभू ने सिर उठाकर कुतबी को देखा, पहले कोई कड़ा उत्तर

देना चाहा, फिर सँभलकर बोला—"कहीं नहीं भाई; अपने कर्मों के फल भोगने जा रहा हूँ !"

"क्यों, क्या हुआ ?" कुतबी का स्वर सहानुभूति से भीगा हुआ था।

सिंभू ने असली बात छिपाकर कहा—"सुबह से बुरी हालत है, भैया…"

"किसकी ? भाभी की ?"

"हाँ, सुबह से खून की क़ै कर रही है। श्यामपुर से हकीम जी को लाया हूँ। उन्होंने…पेड़ की पत्तियाँ लाने को कहा है।"

"अरे ! रात को तो अच्छी-बिच्छो थी; रात-रात में क्या हो गया ?"

"हुआ क्या भाई, तकदीर के चक्कर हैं !"

कुतबी सिंभू के साथ-साथ चल रहा था। कहने लगा—"तो तुम ठाकुर साब, क्यों हैरान होते हो ? तुम घर चलो; मैं पत्ते तोड़कर लाता हूँ।…दुःख-सुख में काम न आया, तो कब आऊँगा ?"

सिंभू का क्रोध-भाव घटा। उसने कुतबी पर गहरी नज़र डालकर कहा—"नहीं भाई, तुम मेरे लिए क्यों तकलीफ़ उठाते हो ? अपनी मुसीबत को मैं खुद ही झेल लूँगा।"

"वाह, ठाकुर साब, इसमें तकलीफ़ की क्या बात है ! मैं तो आपका ग़ुलाम हूँ। जाओ, पत्ते लेकर मैं अभी आया !"

सिंभू हारकर घर को चला, और कुतबी जंगल को।

कुतबी पत्ते लेकर शीघ्र ही आ गया। हकीम जी ने भगवानदेई को दवा दी और पत्ते पीसकर दवा मिलाने की विधि बताई। भगवानदेई सिल लोढ़ा लेकर पत्ते पीसने लगी।

कुतबी ने सिंभू को एक तरफ़ ले जाकर धीरे से पूछा—"ठाकुर साब, क्या तकलीफ़ हो गई अचानक ?"

सिंभू एकदम असली बात बताने की हिम्मत न कर सका। बोला—"भाई, तकदीर के चक्कर हैं !"

कुतबी के मन में अभी-अभी एक बात आई थी; उसका उपयोग किए बिना वह न रह सका। सिंभू के कान में बोला—"ठाकुर साब, एक बात है !"

"क्या ?"

"कहने को जी तो नहीं चाहता, पर···सुनकर नाराज़ तो न होंगे ?"

"मैं तुम पर क्या नाराज़ होऊँगा भाई, बोलो, क्या बात है ?"

कुतबी एक बार रुका; जैसे खाई पार करनेवाला घोड़ा शरीर तोलने के लिये रुकता है, फिर एकदम कह बैठा—"रामसनेही ने भाभी पर मूठ छुड़वाई है !"

सिंभू निस्तब्ध खड़ा रहा।

कुतबी ने आगे कहा—"रात को तुम्हारे पास से गया था न··· रामसनेही का घर तो रास्ते में ही है; देखा—नरसिंह भगत और रामसनेही अपनी छत पर खड़े हैं ! नरसिंह भगत हाथ में कुछ लिए हुए है और मुँह से कुछ कह रहा है। फिर उसने हाथ की चीज़ को आसमान की तरफ़ फेंक दिया और तीन बार 'सरूपी ! सरूपी ! सरूपी !' कहा। मैंने देखा—उस चीज़ का रंग लाल सुर्ख हो गया और उड़ती हुई तुम्हारे घर की तरफ आने लगी। मारे डर के मेरे बदन में तो पसीना आ गया !"

सिंभू वज्राहत-सा खड़ा रहा।

कुतबी ने कहा—"अब ठाकुर साब, किसी तरह उजड़ता हुआ घर बचाओ ! नरसिंह भगत की मूठ बड़ी तेज़ होती है।"

अब सिंभू के मुँह से निकला—"तभी !···भला दो-चार थप्पड़-लातों से खून फेंकने की नौबत आ सकती थी ?"

कुतबी चौंका। बोला—"थप्पड़-लात कैसी ?"

सिभू ने कहा—"कुछ नहीं जी, मामूली बात थी; हाथ चला बैठा।···यही रोज़ के झगड़े!"

कुतबी ने लापरवाही से सिर घुमाकर कहा—"मार-पीट तो सभी के घर में होती है जी, क्या खून की क़ै करने की नौबत आती है? यह तो ठाकुर साब, नरसिंह भगत की करतूत है, जो यह सब नचा रही है! समझे···फ़ौरन दौड़-धूप करो, वर्ना पीछे सिवा पछतावे के कुछ हाथ न लगेगा!"

"तो क्या करूँ, भाई?" सिभू ने मानो निराशा के समुद्र में डूबने हुए कहा।

"मेरी मानो, फ़ौरन शाहपुर चले जाओ; न्यादर ओझे को लेकर आओ। नरसिंह भगत की मूठ काटने की हिम्मत उसी में है।···या कहो, तो मैं जाऊँ; तुम यहाँ रहो।"

सिभू ने नेत्रों में कृतज्ञता और दीनता भरकर कहा—"तुम्हारा एहसान कभी न भूलूँगा, भाई! करो हिम्मत!"

'वाह! एहसान क्या! अभी जाता हूँ।' कहते हुए कुतबी बाहर हो गया।

सिभू कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे से बोला—"राम-सनेही, देर है, अंधेर नहीं, परमात्मा सबको देखता है!"—और तब वह भीतर हकीम जी के पास चला।

कुतबी सिभू के घर से निकला, तो सीधे नूरन के पास पहुँचा। जाकर बोला—"लो उस्ताद! सिभू भी हाथ में आ ही गया समझो!"

नूरन ने पूछा—"कैसे? क्या हुआ?"

कुतबी ने सब दास्तान सुनाई और कहा—"सिभू पर रंग जम गया है; अब वह ज़रूर हमारी मदद करेगा।"

नूरन बोला—"बेशक, तरकीब तो तुमने लाजवाब की है! मगर उस पर एतबार करना हिमाकत है, न मालूम किस वक्त

पलट जाय और बना-बनाया काम बिगाड़ दे !"

कुतबी ने कहा—"नहीं जी, इस बार का रंग सहज ही नहीं छूटेगा। सरूपी के बचने की उम्मीद नहीं है; मुँह से खून फेंक रही है !"

नूरन ने प्रश्न किया—"मगर तुम जो न्यादर ओझे को बुलाने के लिए उसके घर से आए हो, उसका क्या जवाब दोगे ?"

कुतबी ने हँसकर कहा—"यह मैं पहले ही सोच चुका था। न्यादर असल मे शहर गया है; मैं जाकर यही कह दूँगा। क्यों, ठीक है ? अब तो शक की गुंजाइश नहीं है ?"

नूरन ने कुतबी की पीठ ठोकी और कहा—"शाबाश पट्ठे ! तू वाकई काबिले तारीफ़ है।"

कुतबी ने गौरव की लाज से दबकर सिर नीचा कर लिया।

नूरन ने कहा—"तो तुम सिभू से इस बात का ज़िक्र करोगे ?",

"किसका ? खेत जल……"

"हाँ-हाँ, इसी का।"

"…एकदम ज़िक्र करना तो ठीक नहीं; हाँ, इशारा ज़रूर कर दूँगा कि जल्द ही रामसनेही को इसका मज़ा चखाऊँगा।"

"…हाँ, ठीक है, अभी कोई ऐसी बात न कह बैठना जिससे इस मामले में किसी तरह मेरा लगाव ज़ाहिर हो। बल्कि तुम कल ज़ाहिर तो यह करना कि रामसनेही का खेत तुमने उसका बदला लेने को ही जलाया था।"

"अच्छी बात है। मगर उस्ताद, ऐंडी-बैंडी पड़ने पर मुझे बचाओगे तो तुम्हीं ?"

"क्यों नहीं ? यह भी कोई कहने की बात है !"

और बहुत-सी बातें होती रहीं, फिर कुतबी सिभू के घर न्यादर ओझे की ख़बर लेकर चला।

□□

८

दूसरे दिन सुबह तक सरूपी को दशा बहुत ख़राब हो चुकी थी। ख़ून की क़ै-पर-क़ै आ रही थीं और सख़्त बेहोशी थी। कुतबी कई जगह जा चुका था, पर अब तक सब तरफ़ से निराशा हाथ लगी थी। न्यादर ओझा तो शहर गया था। और कोई ओझा, भगत अथवा स्याना न मिल सका, जो नरसिंह भगत की मूठ का 'तोड़' कर सकता। सिंभू किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा था। भगवान-देई से भी उसने मूठ की बात कह दी थी। भगवानदेई को उसकी बात पर विश्वास कर लेने में कोई आपत्ति न हुई। वह साँझ से ही रामसनेही, उसकी स्त्री और उसके पुत्र को कोस रही थी।

सुबह होने पर वह घर से बाहर निकला। गाँव आज असाधारणतया सुनसान था। एक बार उसे कुछ अचरज भी हुआ। पर अधिक जिज्ञासा उत्पन्न होने की उसके मन में जगह न थी। चिंता और दुःख के भार से दबा हुआ वह धीरे-धीरे चला जा रहा था।

इसी अवस्था में वह गाँव से बाहर हो गया। अचानक हवा के एक बड़े झोंके के साथ बहुत-से आदमियों के मुँह से निकली हुई आवाज़ उसके कान में पड़ी। उसने चौंककर सिर उठाया और उस तरफ़ देखा। पचासों आदमी दिखाई दिए, जो खेतों के चारों तरफ़ खड़े थे। सिंभू ने चिहुँककर पहचाना—खेत रामसनेही के थे!

सिभू के हृदय में ज़ोर का झटका लगा। यह क्या हुआ ? किसने किया ? कैसे किया ? वह वहीं खड़ा हो गया। एक बार सोचा—खेतों की तरफ़ चलूँ। वहीं चलकर सब बातें मालूम हो जाएँगी। कुछ दूर इस भीड़-भाड़ या जले हुए खेतों की तरफ़ बढ़ा भी, पर फिर ठहर गया। उसका जाना ठीक नहीं है। न इतनी दूर जाने की उसे फ़ुरसत है।

परन्तु सारी बात जानने की इच्छा तो बड़ी प्रबल थी। इतने में उसने देखा—कोई उधर से दौड़ता आ रहा है। दौड़कर आने-वाला बलदेव था। सिभू ने पूछा—"क्या बात है भाई, यह कैसी भीड़-भाड़ है ?"

बलदेव ने विचित्र दृष्टि से प्रश्नकर्त्ता को ताका—सिर से पैर तक ! फिर बोला—"तुम्हें पता नहीं ?"

"वाह रे पागल ! पता होता, तो पूछता ही क्यों ?"

बलदेव बड़ी असभ्यता से कुछ देर उसे घूरता रहा, फिर मुँह फेरकर बोला—"रामसनेही के पके खेत में कोई पापी रात को आग लगा गया है !" पापी कहते हुए उसकी आँखें चमकीं।

सिभू इसी उत्तर की आशा कर रहा था; अचरज का भाव वह बना न सका। बलदेव उसका भाव बदलता न देख कुछ और ही समझा। उसने कहा—"करनी का फल सबको भोगना पड़ता है। ऐसा पाप करनेवाले के तन में कीड़े पड़ते हैं।" और वह मुँह बनाता हुआ दूसरी तरफ़ चला गया।

बलदेव का भाव सिभू से छिपा न रहा। क्या लोग मुझे अपराधी समझ रहे हैं ? सिभू इसी सोच में वहाँ खड़ा रह गया। इतने में कुछ लोगों की बातचीत करने की आवाज़ उसने सुनी। सिर उठाकर देखा—चार-पाँच आदमियों का झुंड गाँव के पास आ पहुँचा है और उनके पीछे भी बहुत-से आदमी उधर ही आ रहे हैं। उसने वहाँ ठहरना अच्छा न समझा। तेज़ी से घर की तरफ़

चल दिया।

पर खेद ! आनेवालों ने उसे देख लिया था और उसका उन्हें देखकर चले जाना उसके लिए बहुत अहितकर सिद्ध हुआ।

× × ×

सिंभू दिन-भर स्त्री की देख-रेख में लगा रहा। घर का दरवाज़ा उसने भीतर से बंद कर लिया और सुबह से दोपहर तक आँसू भरी आँखों से सरूपी के सिराहने बैठा रहा।

भगवानदेई ने रोटी तैयार की और सिंभू से खाने का अनुरोध किया। सिंभू को भला रोटी भाती ? उसने इनकार कर दिया।

"कल से दाना मुँह में नहीं डाला है; इस तरह तो तुम पड़ रहोगे, फिर काम करनेवाला कौन रह जाएगा ?" इसी तरह की बातें कहकर भगवानदेई ने आख़िर सिंभू को थाली पर बैठा ही दिया। ज्यों-त्यों करके आधी रोटी उसने गले के नीचे उतारी और खड़ा हो गया।

भगवानदेई तब थोड़ी देर के लिए अपने घर गई। जब आई, तो बड़ो घबराई हुई-सी सिंभू से कहने लगी—"अरे, बड़ा गजब हो गया रे !"

"क्या हुआ ?"

"रात को रामसनेही के पके खेतों में आग लग गई !"

"वह मुझे मालूम हो चुका है।···इससे आगे भी कुछ हुआ है ?"

"हाँ, हुआ क्यों नहीं ? लोग कुतबी को पकड़कर थाने ले गए हैं।"

"कुतबी को ?" सिंभू ने चौंककर पूछा।

"हाँ, कुतबी को। खेतों से गाँव तक उसके पैरों की छाप मिली है।······कुतबी बेचारा ऐसा आदमी है नहीं ! कल देखो, तुम्हारे लिए ही कितनी दौड़-धूप करता रहा !"

सिभू ने आप-ही-आप कहा—"कुतबी को थाने ले गए हैं !"

भगवानदेई समझी—मुझसे प्रश्न किया है। बोली—"हाँ, ले तो गए हैं, पर कुतबी ऐसा आदमी जान नहीं पड़ता। उसे रामसनेही से ऐसा क्या बैर ?" कहते-कहते भगवानदेई का स्वर संदिग्ध हो उठा।

चाची का बदला हुआ स्वर कान में पड़ते ही सिभू जग-सा पड़ा। सँभलकर बोला—"हाँ, यही मैं सोच रहा हूँ। भला कुतबी को उससे क्या दुश्मनी थी ? वह उसके खेतों में आग लगाने क्यों जाता ?"

चाची ने कहा—"भैया, असल में आजकल तुम्हारे दिन बुरे आ रहे हैं।...लोग कह रहे हैं—'सब सिभू के इशारे से हुआ है।' तुम अपनी ही मुसीबत में पड़े हो, भला किसी का क्या बुरा सोचोगे ?...ठीक है, ऐसे ही समय में बैरी अपना बैर निकालते हैं !!"

सिभू फिर सोच में पड़ गया। मुँह से कुछ न बोल सका।

भगवानदेई ने अधिक संदिग्ध होकर कहा—"सिभू ....."

"हाँ, चाची !"

"एक बात पूछूँ ?"

"हाँ, पूछो।"

"बुरा तो न मानोगे ?"

"नहीं, पूछो।"

"देखो, कोई इस जनम में किसी का बुरा करता है, तो परमात्मा अगले जनम में उसे इसका फल दे देता है......।"

"हाँ,...........!"

"रामसनेही ने तुम्हारे साथ बुराई की, तो उसे इसका फल जरूर मिलेगा।"

चाची की भूमिका से ऊबकर सिभू ने कहा—"तो तुम्हारा

मतलब क्या है ?"

चाची ने एकदम कह दिया—"कहीं सचमुच तेरे इशारे से तो कुतबी यह पाप नहीं कमा बैठा ?"

सिंभू ने तुरन्त कहा—"चाची, लोग कुछ भी कहें, मैं उनकी पर्वाह नहीं करता। मैं सच्चा हूँ, अपने इस सोए हुए बेटे की देह छूकर कहता हूँ—अगर कुतबी को इस किसम का मैंने ज़रा भी इशारा किया हो, तो मैं इस बालक से हाथ धोऊँ और सात जनम मुझे मानुस-तन न मिले ! दुनिया किसी के हृदय को क्या जाने !"

सिंभू यह कहते-कहते रो पड़ा। चाची की आँखें भी सूखी न रह सकीं। बोलीं—"पागल हुआ है रे ! मैंने तो यों ही तेरा मन दखने को पूछा था ! मैं क्या तुझे जानती नहीं हूँ ! चूल्हे में जाय कुतबी और भट्ठी में जाय उसका काम; तुम बच्चे की सौगंध तो न खाओ !"

भगवानदेई यह कहते-कहते मनोहर को गोदी में उठाकर चूमने लगी। मनोहर जागकर मचलने लगा।

सिंभू ने आँसू पोंछे।

सरूपी बेहोश थी।

× × ×

वह रात भी बुरी तरह कटी। सरूपी के बचने की कोई आशा न रही। सिंभू का मन भविष्य की कल्पना से काँपने लगा। रात में बीसों बार रोया, बीसों बार बच्चे को छाती से लगाया, बीसों बार सरूपी को आवाज़ देकर जगाने की चेष्टा की। पर सरूपी निश्चल, निस्तब्ध पड़ी बड़े कष्ट से अपने साँस पूरे कर रही थी।

सिंभू को सांत्वना देनेवाली एक भगवानदेई थी। बेचारी बुढ़िया बचपन से ही उस पर बहुत स्नेह रखती थी। चौदह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी। सिंभू के बाप ने मुद्दतों तक रोटी-

कपड़े की मदद की थी। इस ममता, इस सहानुभूति और इस लगन के पीछे वही सहायता काम कर रही थी।

रात में सिभू एक क्षण के लिए न सोया। सुनसान कोठे में सरूपी की साँसों की सनसनाहट बड़ी डरावनी, बड़ी बेधक और बड़ी करुणापूर्ण लगती थी। घर भर में निराशा और वेदना के बादल घूम रहे थे, सिभू इन बादलों से लिपटा हुआ तन-बदन की सुध भूल गया था।

सुबह हुई, भगवानदेई को रोगी के पास छोड़, सिभू जंगल की तरफ़ चला। अपने सोच में डूबा चला जा रहा था, अचानक उसे दो आदमियों की बातचीत करने की आवाज़ सुनाई दी। वह खड़ा हो गया।

पाँच-छह पेड़ों के झुरमुट के इस ओर वह था और बातें करनेवाले दूसरी ओर थे। सिभू ने आवाज़ से पहचाना—एक था कुतबी, दूसरा नूरन तेली !

"हाँ, उस्ताद !" कुतबी कह रहा था—"आपकी मेहरबानी से बच तो गया······।"

"अरे, नहीं !" नूरन बोला—"मेहरबानी अल्लाह-ताला की है, हम और तुम तो उसके नाचीज़ बंदे हैं। तुम बच गए, तो उसी के फ़ज़ल से !"

कुतबी बोला—"मगर उस्ताद, बेचारा सिभू बचे, तब बात है ! सारे गाँव का शक उसी पर है। दारोग़ा साहब भी इसी कोशिश में हैं।"

मानसिक उद्वेग के कारण सिभू के पैर लड़खड़ा गए, ज़ोर से 'चर्र' की ध्वनि हुई। सिभू खाँसा और झुरमुट पार करने के लिए मुड़ा। बातें करनेवाले चौंककर रुक गए। इधर-उधर देखा। इतने में सिभू ख़ुद ही उनके सामने आ खड़ा हुआ।

कुतबी सिभू को पहचानकर एक बार डरा, फिर सँभलकर

बोला—"कहिए ठाकुर साब, भाभी का क्या हाल है ?"

सिभू ने कुतबी की बात का कोई उत्तर न दिया; और सूखी टिपटिपाती हुई आँखें खोलकर कहा—"कुतबी, तुमने आख़िर मेरे माथे पर स्याही पोत ही दी !"

कुतबी चुप !

नूरन ने कहा—"क्या हुआ ठाकुर साहब ?"

सिंभू ने नूरन की तरफ़ मुड़कर कहा—"मियाँ जी, मैंने आपकी बातें सुनी हैं। पाप आप लोगों ने किया और दोष मेरे मत्थे मढ़ा जाएगा ! मैं पहले ही से आपदा में फँसा हूँ, आप लोगों ने यह नई मुसीबत खड़ी कर दी ! मेरी औरत मरने को पड़ी है, आपने भी मेरे लिए फंदा तैयार कर दिया। मालूम होता है—औरत को अर्थी में भी आप मेरा हाथ न लगने देंगे।"

चालाक नूरुद्दीन इतनी देर में सँभल चुका था। आगे बढ़कर सिंभू का हाथ पकड़ लिया और तसल्ली देते हुए बोला—"ठाकुर साहब, आप कैसी बातें कर रहे हैं ! जैसे कुतबी को बचाया, वैसे ही आपका भी बाल बाँका नहीं होने दूँगा। मैं मुसलमान हूँ, मगर उस हिन्दू से बेहतर हूँ, जो अपने भाई का घर उजाड़ने में देर नहीं करता। समझे, ठाकुर साहब ! घबराइए नहीं, मैं आपकी मदद करूँगा।"

यह सांत्वना पाकर सिंभू की हिचकियाँ बंध गईं। अब नूरुद्दीन सचमुच पिघल गया; आख़िर मनुष्य था ! उसने सिंभू के आँसू पोंछे और स्नेहसिक्त स्वर में कहा—"चलो भाई, तुम्हारी औरत को चलकर मैं देखता हूँ। घबराओ नहीं। अभी शहर आदमी भेजकर डाक्टर बुलाता हूँ। चलो; तसल्ली रखो।"

सिंभू आवेग में भरकर नूरुद्दीन से लिपट गया और रोते-रोते बोला—"भाई साहब, मुझे बचाना आप ही के हाथ में है।"

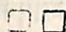
नूरुद्दीन ने उसे ढाढ़स दी और कहा—"चलो, घर चलो।

ख़ुदा तुम्हारी मदद करेगा।"

नूरन और सिभू गाँव की तरफ़ चले। कुतबी कठपुतली की तरह पीछे-पीछे आ रहा था।

परन्तु हाय! समय बीत चुका था, चिड़िया उड़ चुकी थी। जब ये लोग घर में घुसे, तो भगवानदेई बच्चे को गोद में लिए रोती-चिल्लाती कोठे से बाहर आ रही थी।

सरूपी मर चुकी थी।



६

धूप ख़ूब फैल गई थी। रामसनेही अभी तक नहीं उठा था। रात को थका-हारा थाने से लौटा, तो अब तक नींद में पड़ा था।

दुर्गा ने खाट के पास जाकर धीरे-धीरे दो-तीन बार 'उठो-उठो' कहा। रामसनेही जाग गया और अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ। मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, आँखों में चिन्ता धँसी हुई थी।

दुर्गा ने धीरे से कहा—"घनश्याम बाहर से कहता आया है, सरूपी मर गई है। ज़रा उठकर देखो तो, क्या बात है!"

रामसनेही कहाँ तो चिन्ता और सुस्ती में डूबा चुप बैठा था, कहाँ एकदम चौंक पड़ा। बोला—"सरूपी मर गई! कब? कैसे?"

"पता नहीं, कैसे?" दुर्गा ने कहा—"घनश्याम ने कहा है। ज़रा उठकर देखो तो सही।"

रामसनेही झपटकर खाट से उतर पड़ा, खूँटी से चादर उतारी। पर फिर कुछ सोचकर वहीं बैठ गया। बोला—"मर गई, तो मरने दो; हमें क्या गरज!"

क्यों? आख़िर को भाई हो! लड़ाई-झगड़े तो होते ही हैं, मौत-ज़िन्दगी में इन्हें भूल जाना पड़ता है। जाओ, सगे भाई के समान होकर भी क्या शामिल न होगे?"

"अरी, तेरी अकल मारी गई है! किसका भाई, और कौन

भाई ! वह हमारा गला काटे और हम उसे भाई बनावें ! धिक्कार है ऐसे भाई पर और लानत है भाई बनानेवाले पर !"

"नहीं-नहीं, ऐसा सोचे काम नहीं चलेगा। जाना तुम्हें ज़रूर पड़ेगा। क्या हुआ......"

"मैं ! और उसकी अर्थी में हाथ लगाऊँ !..."

"च्च ! च्च ! च्च ! मरने के बाद भी किसी को ऐसा कहा जाता है ! किसी का कोई क़सूर नहीं, सब हमारे कर्मों का दोष है !"

"नहीं जी, परमात्मा सबको देखता है। मालूम होता है, खेत भी इसी हत्यारे सिभू ने जलवाए हैं। गाँववालों का संदेह ठीक है। बेवकूफ़ी तो मेरी ही हुई, जो नूरन पर शक कर बैठा। दारोगा साहब ने तो पूछा था—'सिभू पर शक है ?' मैंने ही इन्कार कर दिया ! ...ख़ैर जी; परमात्मा ने किए का फल दे दिया। वह बड़ा न्यायी है !"

"ख़ैर, यह तो पीछे भी होता रहेगा। उन्होंने खेत जलवाए तो, नूरन ने जलवाए तो, अब तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। उठो।"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता; मैं नहीं जाऊँगा।"

"देखो, चले जाओ। दुनिया नाम धरेगी।"

"मरदों की एक बात होती है। मैं कह चुका—वह मेरे लिए मर चुका, मैं उसके लिए। मैं नहीं जाऊँगा।"

"देखो, चले जाओ, कहा मानो।"

"नहीं, कभी नहीं।"

"देखो, हाथ जोड़ती हूँ, चले..."

"हाथ क्या, पैरों में सिर रगड़ो, तो भी नहीं।"

"चले जाओ, चले जाओ। बखत निकल जाता है, बात रह जाती है।"

"कभी नहीं, मरदों की एक ज़बान होती है।"

"उनके एहसान हैं। चले जाओ।"

"बस, ज़्यादा बकवाद की ज़रूरत नहीं है। मैं नहीं जाऊँगा।"

× × ×

सरूपी की अर्थी जब श्मशान की ओर जा रही थी, तो लोगों में 'रामसनेही नहीं आया' की बड़ी चर्चा रही। किसी ने कहा—"दारोग़ा साहब के सामने तो दुश्मनी निकाली नहीं, अब क्या बात हुई जो मातमपुर्सी तक में शामिल न हुआ?"

"आदमी का मन ही तो है, आ गया होगा कोई ख़याल।"

"हमारी समझ में तो कुछ और ही आ रहा है।"

"क्या?"

"घरवाली ने भरा है।"

"क्या अचरज है!···मगर यार, उसकी औरत की तो बड़ी तारीफ़ सुनी जाती है!"

"अजी, सब दूर के ढोल सुहावने होते हैं।···"

"पर साब, परमात्मा देखता सबको है।"

"कैसे?"

"रामसनेही ने भाई समझकर बखस दिया, तो परमात्मा ने दंड दे दिया। वाह! इस हाथ दे, उस हाथ···"

"हिश्! पागल! ये बातें कहीं ऐसे मौके पर होती हैं! चुप!!"

'राम-नाम सत्य है' के निनाद में ऐसी ही बातें चुप-चुप होती जा रही थीं।

उधर सिंभू के जी पर जो बीत रही थी, वही जानता है। स्त्री की जीवितावस्था में वह सदा उसकी मौत मनाया करता था, पर अब? उसे ऐसा अनुभव हो रहा था, मानो उसकी आत्मा का आधा सत्त्व सरूपी की अर्थी पर लिपटा जा रहा है! रो न सकता

था, चिल्ला न सकता था, बोल न सकता था। केवल मन-ही-मन घुल रहा था !

लोगों का मत—उसकी स्त्री के विषय में—जो था, उसकी भनक उसके कानों में पड़ चुकी थी। स्त्री की मौत ने अगर ज़ख्म किया, तो लोगों के इस मत ने नमक छिड़का। पर अन्त में यह सोचकर बेचारा संतोष कर लेता था कि आदि से अन्त तक वह उस विषय में पूर्ण निर्दोष है। लोग नाहक उस पर संदेह कर रहे हैं।

रास्ते में एक आदमी ने उसे सुनाकर दूसरे से कहा—"राम-सनेही दिखाई नहीं दिया।"

दूसरे ने कहा—"अजी, वह भला आता !"

"क्यों ?"

उत्तर सक्रोध सिभू ने दिया—"उसका यहाँ आने का मुँह कहाँ था ? परमात्मा सबको देखता है। उसे अपने किए का फल जल्दी ही भोगना पड़ेगा। परमात्मा के यहाँ देर है, अंधेर नहीं।" यह कहते-कहते वह अर्थी को कंधा देने आगे बढ़ गया।

× × ×

जब चिता में आग दी गई, तो सिभू एक वयोवृद्ध सम्बन्धी के कंधे पर हाथ रखकर रो उठा। वृद्ध ने स्नेहसिक्त स्वर में उसे सांत्वना दी और कहने लगे—"सब्र करो, बेटा ! उसे इतने ही दिन इस चोले में रहना था !"

सिभू रोते-रोते बोला—"मैं ही उसका हत्यारा हूँ। मैंने ही उसे मारा है। हाय ! वह मर गई; मैं पापी न मरा !"

सब लोग वहीं आ गए थे। एक ने कहा—"अरे, बावला हुआ है, सिभू ! कोई अपने हाथ से अपना घर बिगाड़ता है ? अरे ! उसने पिछले जन्म में बड़ा तप किया होगा, जो चूड़ी पहने चिता

पर चढ़ गई।"

एक अधेड़ महाशय खेद प्रकाश करने लगे—"साब, बहुएँ सैकड़ों हमारी नज़रों से गुज़रीं, पर यह 'एक' ही थी! बड़ी दिलावर थी! बड़ी कमेरी थी! हाड़ कँपानेवाला जाड़ा पड़ता, हम लोग अलाव पर बैठे हुए भी कँपकँपाते और वह ऐसे समय में ही बीसों घड़े पानी भरती थी। अदब-क़ायदा इतना रखती थी कि किसी ने आज तक नहीं देखी!"

ऐसी ही अनेक बातें सरूपी के विषय में हुईं। सिंभू सब सुनता था और उसका मन अधिक-अधिक उमड़ता था। ख़ैर, किसी प्रकार मन सँभला, स्त्री की चिता पर एक हारी हुई दृष्टि डाली और सब लोगों के साथ नदी-स्नान करने चला गया।

चिता धू-धू करके जल रही थी! चट्-चट् आवाज़ निकल रही थी!! और, लड़ाका कर्कशा सरूपी का मृत शरीर राख में परिणत हो रहा था!

× × ×

साँझ को नूरुद्दीन और कुतबी सिंभू के घर पहुँचे। सिंभू बच्चे को गोद में लिए खाट पर उदास बैठा था। इन्हें देखकर खड़ा हो गया। बोला—"आइए!"

नूरन वहीं पड़ी एक बोरी बिछाकर बैठ गया। कुतबी ज़रा दूर बैठा। सिंभू चुप बैठा रहा, आँखें ज़मीन पर लगाए रहा। बात कैसे चले, तीनों यही सोच रहे थे। इतने में सिंभू की आँखों से कई आँसू टपक पड़े।

नूरन ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ा और कहा—"अरे भाई! क्यों ग़मगीन होते हो? मौत पर किसका चारा? सब्र करो।"

सिंभू ने कहा—"भाई जी, कैसे सब्र करूँ? उसकी उम्र क्या

मरने की थी ? अच्छी-बुरी जैसी थी, घर में दिखाई तो देती थी। अब तो यह घर फाड़ खाने को आता है।"

नूरन ने कहा—"ठीक है, भाई, कहा हो है—बिन घरनी घर भूत का डेरा। सो भाई, घर की रौनक तो औरत से ही है।"

कुतबी बोला—"ठाकुर साब, घबराइए नहीं, जिसने आपका चमन उजाड़ा है, उसका ख़ुदा उजाड़ेगा।"

नूरन ने कहा—"ख़ुदा बड़ा आदिल है।···क्यों भाई सिंभू, रामसनेही मातम-पुर्सी में शरीक हुआ या नहीं ?"

सिंभू ने 'नहीं' में गर्दन हिला दी।

कुतबी कहने लगा—"अजी, शरीक होना कैसा ? वह तो गाँव भर में ऐसी भद्दी-भद्दी बातें कहता फिरता है कि·······बस, क्या कहूँ···!"

नूरन ने पूछा—"क्या ?"

"बस, उस्ताद, पूछो मत; खाम खां ठाकुर साब का रंज बढ़ेगा।"

"नहीं, कहो।" सिंभू बोला—"क्या बातें कहता फिरता है ?"

कुतबी हिचक-हिचककर बोला—"कहता है—'अच्छा हुआ, किए का फल मिल गया, हाथों हाथ बदला पा लिया।' ऐसी ही बहुत-सी बातें ! बस; इसी से समझ लो।"

सिंभू ने कहा—"हूँ !"

नूरन ने कहा—"अच्छा ! अभी साले की ऐंठ गई नहीं ? अभी और कुछ जी में है ?"

कुतबी ने कहा—अभी तो कोठी-कुठले अनाज से भरे हैं !"

नूरन कुछ सोचते हुए आप-ही-आप बड़बड़ाया—"अभी साले की ऐंठ नहीं निकली ! अच्छा देखूँगा !"

सिंभू ये बातें बड़े आवेगपूर्ण मन से सुन रहा था। अब उसके

मन में न रामसनेही के प्रति स्नेह रह गया था, न उस स्नेह से पैदा होनेवाला धर्म-भय !

नूरन ने उसका भाव ताड़ लिया। बोला—"कहो भाई सिंभू, अब भी भाई का लिहाज़ रखोगे ?"

सिंभू क्या जवाब दे ? आँखें नीची किए हुए चुप !

नूरन बोला—"तुम्हारे दिल में जो तूफ़ान बरपा है, उसका अंदाज़ा मैं कर सकता हूँ। मैं हूँ—तुम्हारी जात-बिरादरी का नहीं, तुम्हारा रिश्तेदार नहीं, तुम्हारा कुछ नहीं, मुझे जब ऐसा जोश आ रहा है, तो तुम्हारे ऊपर तो सारी बात बीती है, तुम्हारी क्या हालत होगी ?"

सिंभू तब भी कुछ न बोल सका। उसका न बोलना ही नूरन के अनुकूल था। उसने फिर कहा—"मुझे तुमसे बहुत हमदर्दी है। मैं ज़ुल्म करनेवाले के मुक़ाबले में ज़ुल्म बरदाश्त करनेवाले से ज़्यादा नफ़रत करता हूँ। मैं कभी यह राय नहीं दूँगा कि तुम रामसनेही के इस बेरहम हमले को चुपचाप बरदाश्त कर लो ! मैं कहता हूँ, तुम्हें इसका बदला लेना चाहिए।"

सिंभू खुद ही ऐसा चाहता था और उसने भावभंगी से जो की बात प्रकट भी कर दी।

नूरन ने सब-कुछ समझकर कहा—"मैं एक इनसान की हैसियत से तुम्हारी पूरी मदद करूँगा। सिर्फ़ तुम्हारा इशारा चाहता हूँ, फिर इस बदमाश को मज़ा चखाना मेरा काम है।"

नूरन जितना चाहता था, उससे भी अधिक इशारा उसने पा लिया ! इतने में भगवानदेई आ पहुँची। नूरन अपनी बात ख़त्म कर चुका था। दो-चार साधारण बातों के बाद उसने कुतबी के साथ प्रस्थान किया।

× × ×

घर पहुँचकर नूरन ने कुतबी से कहा—"ठीक रहा न ?"

"बिल्कुल ठीक !" कुतबी ने कहा।

"रात को रामसनेही ढोर चराने जाता है। बस, मौका देखते रहो।......"

"अच्छी बात है।"

"ढोर चराने तो और भी जाते हैं, पर यह ऐंठू मियाँ सबसे पहले और सबसे अलग जाते हैं। यह और भी अच्छी बात है !"

"बेशक !"

"हाँ, तुम हो, निसारू है, बुंद्दू है, आज़मअली है; और एकाध हो जायगा......।"

"बस जी बस, ज़्यादा की क्या ज़रूरत है ? अव्वल तो मैं अकेला ही काफ़ी हूँ, नहीं तो एकाध और सही।"

"यह तुम्हारा कहना ठीक है, मगर अपनी तरफ़ से तो तैयार रहना चाहिए।......हाँ, देखो, जब दुश्मन गिर जाय, तो भैंस लेकर चल देना। भैंसें जहाँ पहुँचानी हैं, बुंद्दू वह जगह जानता है।"

"कहाँ ?"

"बुंदू जानता है।......देखो, इससे दो फ़ायदे होंगे। एक तो दोनों भैंसें चार सौ से कम की नहीं हैं, दूसरे, लोग समझेंगे, चोरों की करतूत है; हम पर किसी का शुबहा भी नहीं जायगा। समझे ?"

"वाह, उस्ताद ! क्या तरकीब सोची है ! दोनों हाथ लड्डू !! क्यों न हो, आखिर हो तो उस्ताद ही न ! वाह वा ! वाह !!"

"मामूली बात है !......जाओ, अब बुंदू, निसारू, टूंडू और आज़मअली को यहाँ बुला लाओ। कहना, ज़रा नज़र बचाकर आएँ। अँधेरा हो गया; कोई देखेगा नहीं। जाओ।"

कुतबी अपनी मौत का सामान करने चल दिया।

□□

१०

पूरा चाँद खिलखिला रहा था। रात का तीसरा पहर शुरू हो गया था। लोग-बाग ढोर चराने जाने को उठ खड़े हुए थे। कुछ ने ढोर खोल भी लिए थे। इतने में गाँव के बाहर बहुत दूर किसी के ज़ोर-ज़ोर से चीखने की आवाज आई।

चीख मदद के लिए थी, ऐसा सुननेवालों ने अनुमान लगाया। कुछ लोग हाथों में लाठी लेकर गाँव से बाहर की तरफ़ दौड़े।

सामने—कोई एक मील दूर से कोई फिर चिल्लाया। लोग उसी चिल्लाहट को लक्ष्य करके जी छोड़कर भागे।

वहाँ पहुँचकर देखा—एक आदमी लाठी ज़मीन पर टेके एक ऊँचे मिट्टी के ढूहे पर सिर झुकाए बैठा है—जैसे दम ले रहा हो, और एक दूसरा आदमी सामने घास पर पड़ा है। कई गाय-भैंसें इधर-उधर चर रही थीं।

आनेवालों ने पहचाना—बैठा हुआ रामसनेही था और पड़ा हुआ कुतबी! कुतबी का सिर फट गया था और उसी के सदमे से उसके प्राण निकल गए थे! रामसनेही चैतन्य होकर उठ खड़ा हुआ। आनेवालों में से एक ने पूछा—"क्या हुआ यह? अरे, ओ रामसनेही!"

"बात यह हुई," रामसनेही ने एकदम कहना शुरू कर दिया —"मैं ढोर चरा रहा था। इतने में कई आदमियों ने आकर मुझे घेर लिया। सबके मुँह काले रंग में रँगे थे, इससे मैं किसी को

पहचान न सका। उन लोगों ने मुझ पर हमला कर दिया। सबके हाथों में लाठियाँ थीं। मैं ज़ोर से चिल्लाया और लाठी घुमानी शुरू कर दी। यह कुतबी मेरी लाठी का हाथ खाकर गिर पड़ा और मर गया। इसके और सब साथी भाग गए। मुझे भी चोट आई है।" यह कहकर रामसनेही ने सिर पर, बाँह पर, कंधे पर चोट के चिन्ह दिखाए।

वाद-विवाद के बाद सब-कुछ उसी तरह छोड़ दिया गया। दो आदमी थाने की ओर दौड़े।

थानेदार साहब ने सरगर्मी से खोज शुरू की। रामसनेही को बड़ा आश्चर्य था। कल ही जिस थानेदार ने उससे सहानुभूति प्रकट की थी, आज वह ऐसा रूखा क्यों है? उससे ऐसे संदेहजनक प्रश्न क्यों कर रहा है? उसे कुतबी की हत्या के अपराध में फाँसने में इतना प्रयत्नशील क्यों है?

यह सब नूरुद्दीन के लिहाज़ और पैसे का प्रभाव था। नूरुद्दीन ने गवाही दी—"रामसनेही और कुतबी की मुद्दत से अनबन थी। अभी हाल में कोई इसके खेत में आग लगा गया, तो इसने कुतबी को फँसाने की कोशिश की थी। शाम को कुतबी मुझे मिला था। वह शाहपुर जा रहा था। मालूम होता है, लौटते वक्त रामसनेही ने उसे मार डाला।"

कुतबी की माँ ने रोते-रोते कहा—"कुतबी शाम को शाहपुर गया था। पासू नाई से कुछ रुपए लाने थे; वही लेने गया था। कह गया था, रात को लौट आऊँगा। पर रात को इस रामसनेही ने उसे मार डाला!" कुतबी की माँ दहाड़ मारती हुई रामसनेही को कोसने लगी।

सिंभू ने इस बयान पर अँगूठा लगाया—"कोई दो पहर रात गए मेरे पेट में दर्द उठा। मैं घर से बाहर निकला। गाँव के पास वाले जोहड़ में पानी नहीं था, इसलिए मैं आगे नाले के पास जाकर

बैठा। इतने में मैंने किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुनी। देखा, थोड़ी दूर पर दो आदमी लड़ रहे हैं और उनमें एक चिल्ला रहा है। मैंने पहचाना, आवाज़ कुतबी की थी। मैं खड़ा हो गया। इतने में एक आदमी ज़मीन पर गिर पड़ा और दूसरा उस पड़े-पड़े पर ही लाठियाँ चलाने लगा। ज़मीन पर पड़ा हुआ आदमी कई बार चिल्लाया और ठंडा हो गया। मैं दौड़कर नाले पर गया, हाथ धोए और उस तरफ़ चला। इतने में गाँव की तरफ़ से बहुत-से आदमी भागते हुए आए और मैं भी उनमें शरीक हो गया!"

मुजरिम रामसनेही ने बयान दिया—"मैं रात को ढोर चरा रहा था। इतने में कई आदमी मुँह काले किए मुझ पर आ टूटे। मैं चिल्लाया, लाठी सँभालकर उनका मुकाबला किया और उनमें से एक को मार गिराया। अपने एक साथी को गिरते हुए देखकर बाकी सब भाग गए। मेरी चिल्लाहट सुनकर गाँव की तरफ़ से बहुत-से आदमी दौड़ पड़े। मैंने गिरनेवाले के पास जाकर पहचाना, कुतबी था। फिर अलग बैठकर मैं गाँववालों के आने की राह देखने लगा।"

थानेदार ने कुतबी की हत्या के अपराध में रामसनेही का चालान कर दिया। सारे गाँव में तहलका मच गया। जो रामसनेही के मित्र थे, वे कहने लगे—"हे भगवान्! तेरे देखते ऐसा अन्याय हो रहा है! तेरे जानते हुए पापी पाप-कर्म कर जाते हैं! नूरुद्दीन और सिंभू ने बुरी तरह फँसा दिया बेचारे को! हे ईश्वर! रामसनेही, उसकी बहू और उसके बच्चे की रक्षा तेरे हाथ में है!"

स्त्रियाँ दुर्गा के पास जाकर उसे धीरज बँधाती थीं! दुर्गा रो-रोकर व्याकुल हो रही थी। घनश्याम रोते-रोते बेहोश हो चुका था। घर में कहर बरस रहा था! सिंभू या नूरुद्दीन इस दृश्य को देखकर पिघले या नहीं, कह नहीं सकते।

रामसनेही के विपक्षी भी गाँव में थे ही। वे कहते थे—"साले की हड्डियाँ ज़्यादा कुलमुलाई थीं न ! हर किसी से रार मोल लेता फिरता था ! अपने सामने किसी को बदता ही नहीं था ! अब बेचारे कुतबी पर दिखा बैठा लठैती के हाथ ! देखेंगे, फाँसी के तख्ते पर लठैती कहाँ रहती है !"

नूरुद्दीन के पट्ठे बग़लें बजा-बजाकर कहते फिरते थे—"बदमाश, चला था नाग से खेलने ! उस्ताद को पछाड़ क्या दिया, रुस्तम बन गया ! चख लिया न मज़ा हाथों-हाथ ! जानता नहीं था, ये उस्ताद नूरुद्दीन हैं !"

इसके बाद दस-पंद्रह दिन बीते। दुर्गा का रुदन थमा। शुभ-चिंतकों की राय से बेचारी ने गहने बेचकर वकील का प्रबन्ध किया। निरपराध की निरपराधिता प्रमाणित करने के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हुई !

आख़िर वह दिन आ पहुँचा जब रामसनेही का मुक़द्दमा सैशन जज की अदालत में पेश हुआ। रामसनेही हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ा हुआ था। नूरुद्दीन, सिंभू, कुतबी की माँ, पासू नाई और ख़ुद दारोग़ा साहब भी गवाहों के कटघरे में मौजूद थे।

कई पेशी लगीं। आख़िर एक दिन सिंभू की बारी आई। सिंभू गवाही देने को तैयार हुआ। नूरुद्दीन आदि भी पास ही मौजूद थे। सारा दारोमदार सिंभू की गवाही पर ही था। उसने एक बार रामसनेही की तरफ़ देखा। रामसनेही का चेहरा सूख गया था, गालों पर गड्ढे पड़ गए थे, आँखें सजल और फटी-फटी हो रही थीं, मानो दया की भिक्षा माँग रही हों !

सिंभू की छाती में मुक्का-सा लगा। मैं क्या कर रहा हूँ ! एक बार जान पड़ा, मानो अदालत का कमरा, जज साहब, वकील, चपरासी सब लोग ज़ोर-ज़ोर से घूमने लगे हैं ! सिर झाँय-झाँय करने लगा। अपने को सँभाल न सकने के कारण वह सिर पकड़-

कर धरती पर बैठ गया। पर चालाक नूरुद्दीन ने संदेह का मौक़ा न दिया। जज साहब की ओर देखकर उसने नम्रतापूर्वक कहा—"हुज़ूर, इसे कभी-कभी चक्कर आ जाते हैं।" सिंभू को उसने सँभालकर खड़ा किया।

तब सिंभू ने जी कड़ा करके उस बयान को दुहरा दिया, जो उसने दारोग़ा साहब के सामने दिया था। सब बयान पहले-जैसे थे। केवल दारोग़ा साहब ने यह बयान और दिया—"खून की वारदात के कई दिन पेश्तर मुजरिम रामसनेही के खेत में रात को कोई आग लगा गया। रामसनेही ने कुतबी पर इसका इल्ज़ाम लगाया, मगर सुबूत की कमी की वजह से कुतबी कुसूरवार साबित न हो सका। मुजरिम रामसनेही ने तब दाँत पीसकर कहा—'अच्छा बदमाश, तुझे मज़ा चखाऊँगा।' कुतबी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।"

रामसनेही से कैफ़ियत माँगी गई, तो पहले उसके मुँह से बोल न निकल सका। फिर बड़ी कठिनता से उसने अपने को निरपराध बताया और उस बयान को दुहराया, जो वह पहले दे चुका था।

उसके वकील ने गवाहों से जिरह की। सब सिखाए-पढ़ाए पक्के थे; कोई न पसीजा। सिंभू ने भी सँभल-सँभलकर अपनी परीक्षा समाप्त की। रामसनेही सारी जिरह सुन रहा था। वकील साहब जब हारने-से लगे और अपने फँसने का उसे निश्चय हो गया, तो अचानक एक विचार ने उसके मन में ठोकर लगाई। उसने चिल्लाकर कहा—"मैं जानता हूँ, मेरा ईश्वर जानता है, सिंभू भी जानता है कि मैं बेक़सूर हूँ! मेरे ऊपर सरासर अन्याय हो रहा…।"

हाकिम ने रामसनेही को रोकने की कोशिश की, पर वह बराबर कहता ही रहा—"अगर सिंभू सच्चा है, वह गंगाजली

हाथ में लेकर बेटे की कसम खा जाय। मुझे अपना अपराध मंजूर होगा।"

सिभू ने सुना, तो काठ हो गया। बेटे की कसम ! झूठी बात पर ! वह भी गंगाजली हाथ में लेकर !

एक क्षण के लिए उसे सर्वत्र अन्धकार दिखाई दिया ! नूरुद्दीन ने उसकी यह अवस्था देखी। पैर की ठोकर मारकर उसे चैतन्य किया और धीरे से कहा—"कसम खा लेना। अब झिझके, तो दस साल को जाओगे।"

हाकिम ने रामसनेही की बात सुनकर सिभू को तरफ़ देखा और कहा—"क्यों ? कसम खाने को तैयार हो ?"

नूरुद्दीन ने सिभू की कमर पर हाथ लगाकर हल्के से धकेला और कहा—"तैयार है !"

हाकिम ने फिर कहा—"क्यों ? बेटे की कसम खाने को तैयार हो ?"

हाकिम के मुँह से निकला हुआ एक-एक अक्षर मानो बिच्छू बनकर सिभू के शरीर में डंक मार रहा था ! चुप खड़ा रहा।

हाकिम ने फिर कहा—"बोलो, तैयार हो ?"

नूरुद्दीन ने चुटकी ली। सिभू जग-सा गया। बोला—"जी हाँ।"

गंगाजली आई। रामसनेही की आँखों में क्रोध, घृणा और उत्सुकता का भयानक सामंजस्य था।

सिभू गंगाजली को मानो फाँसी की रस्सी समझकर उसकी ओर बढ़ रहा था। नूरुद्दीन आशाप्रद नेत्रों से उसकी गतिविधि देख रहा था। अदालत का कमरा मूक, शांत, निस्तब्ध भाव से इस रहस्यपूर्ण नाटक का सर्वप्रधान दृश्य देखने में तल्लीन था !

सिभू ने गंगाजली पर हाथ रखकर कहा—"मैं अपने बेटे की कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने अदालत को जो बताया है, बिल्कुल

सच्चा है।"

उसी क्षण मानो नाटक का पर्दा गिर गया। नूरुद्दीन ने संतोष की साँस ली और लड़खड़ाते हुए सिंभू को सँभाल लिया।

अचानक सबकी आँखें अचरज से खुल गईं! रामसनेही ने ज़ोर से कहा—"हे ईश्वर! झूठे का नाश हो!" यह कहते-कहते वह मूर्च्छित हो गया।

रक्षकों ने क़ैदी को सँभाला। पानी छिड़का गया, हवा की गई। क़ैदी होश में आया। उसका वकील शायद उसके पक्ष में कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ। क़ैदी ने उसको रोककर कहा—"बस, अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।" फिर उसने हाकिम से कहा—"मैं कुसूरवार हूँ। मुझे फाँसी दो।"

हाकिम ने उसकी तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से देखा और कहा—"तुम इक़बाल करते हो, तुमने ख़ून किया!"

क़ैदी ने कहा—"हाँ, मैंने किया—किया—किया; मुझे फाँसी दो।"

हाकिम ने फ़ैसला सुनाया—"...मुजरिम जुर्म का इक़बाल करता है।—कुतबी का ख़ून करने के अपराध में उसे जान निकलने तक फाँसी पर लटकाए रखा जाय।"

हाकिम यह कहकर कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया।

सिंभू मानो सोते-सोते जग पड़ा। उसने भागती नज़र से एक बार रामसनेही की तरफ़ देखा। जाते हुए हाकिम की तरफ़ ज़ोर से चिल्लाकर वह उन्हें पुकारना चाहता था, या न जाने क्या, पर नूरुद्दीन ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और कहा—"चलो।"

रामसनेही, सिर झुकाए, सिपाहियों के बीच में होकर चला जा रहा था। सिंभू ने उसे देखा और कहा—"हाय!!"

रामसनेही ने सिर उठाकर उस तरफ़ देखा। देखा—नूरुद्दीन

और दो-तीन आदमी सिंभू के हाथ पकड़े उसे दूसरी तरफ़ लिए जा रहे हैं और सिंभू बार-बार उसको देखता है और उसकी तरफ़ आने की चेष्टा करता है !

रामसनेही विक्षिप्त हो चुका था। सिंभू के चेहरे पर आए मनोभाव वह न समझ सका, न उसकी 'हाय' का मतलब।

एक सिपाही ने दूसरे से कहा—"हथकड़ी मज़बूत रखो।"

□□

११

शाम के वक्त भगवानदेई अपने घर में बैठी एक दूसरी स्त्री से बात कर रही थी। बोली—"क्या ज़्यादा बीमार है?"

"हाँ, बुख़ार में लाल हो रहा है। ज़रा-सा बच्चा, तिस पर मुसीबत का पहाड़, बेहोश पड़ा है। बच्चा है तो क्या हुआ, समझता तो सब कुछ है!"

"तो कुछ दवादारू भी दी?"

"करे क्या बेचारी? स्त्री जात, राम के घर का कोप! अपने को सँभाले, या बच्चे को? बेचारी चुप-चुप रोती है और बच्चे को गोद में लिए बैठी है। वह तो यह कहो, इसका सुभाव ही सदा से ऐसा है। भला जिसका मरद फाँसी चढ़ने को तैयार हो, जिसका घर-बार चोरों ने लूट लिया हो, उसे चुप्पी साधे बैठना सुहा सकता है?...पर सिभू को ऐसा बैर निकालना वाजिब तो था नहीं। आख़िर को तो भाई था!"

"क्या बताऊँ? उस दिन के बाद मुझे तो समझाने तक का मौक़ा नहीं मिला। काम तो सचमुच ख़राब हुआ! क्या कहूँ...!"

"क्या कहा? मौका नहीं मिला? सो कैसे?"

"अरी बहन, सारी करतूत तो असल में इस नूरन तेली की है। पहले इसे चंग पर चढ़ाया—'तेरी बहू को रामसनेही ने मूठ छुड़वाकर मरवा डाला।'...तुम जानो स्त्री के मरने का ग़म, आ

गया बहकावे में ! असल में कुतबी के साथ कई आदमी गये तो रामसनेही को मारने ही थे, पर उल्ट कुतबी को अपनी जान खोनी पड़ी । नूरन के सिखावे में पड़कर ही सिंभू ने ऐसी गवाही दी···।"

"अरे ! सचमुच ?"

"हाँ, मेरा तो ख़याल ऐसा ही है।···बस, इसके बाद नूरन ने सिंभू को अकेले छोड़ा ही नहीं, कभी उसके साथ रहता, कभी उसे अपने घर में घुसाए रहता ! क्या करूँ, मुझे तो मौक़ा ही नहीं मिला !"

"पर यह तो बड़ा जुलम हुआ। एक बेक़सूर आदमी फाँसी चढ़ेगा !···अँगरेज़ो सरकार के राज में ऐसा···!"

"देखो, अभी तो सज़ा मिली नहीं ! शायद बच जाय ।"

"हाँ, दुर्गा ने वकील तो बड़ा ज़बर्दस्त किया है। सुना है, हाकिम की जीभ पकड़ता है !"

भगवानदेई ने यह बात अधसुनो करके कहा—"क्या करूँ, मुझे तो मौक़ा नहीं मिला; नहीं तो मैं ज़रूर समझा लेती ।···क्या करूँ, है तो बड़े जुलम की बात। बेचारी दुर्गा का सर्बस लुट जाएगा।"

"हाँ, बड़े जुलम की बात है।"

"तो लौंडा बहुत बीमार है ?"

"बहुत ज़्यादा ! क्या कहूँ—बेचारी पर बिपदा के बादल उमड़ पड़े हैं ।"

इतने में भीतर कोठे में से बच्चे के रोने की आवाज़ आई। उस स्त्री ने पूछा—"यह कौन रोया ?"

भगवानदेई ने उठते हुए कहा—"वही, सिंभू का बेटा है, मनोहर। कचहरी जाता है, तो मुझे सौंप जाता है।"

भगवानदेई यह कहकर कोठे में चली गई। दो मिनट बाद

अर्द्ध निद्रित बालक मनोहर को गोद में उठाए हुए बाहर आई और बच्चे की कमर पर हाथ फेरते हुए बोली—"इसे तो बुख़ार-सा चढ़ आया !"

"बुख़ार चढ़ आया !" उस स्त्री ने बालक का शरीर छूते हुए कहा—"हाँ, बदन गर्म हो गया है।"

"अब क्या करूँ ? भगवानदेई ने चिंतित होकर कहा—"सिभू आएगा, तो क्या कहेगा ?"

"करना क्या है, सब अच्छा हो जायगा। रामू मोदी से दवाई लाकर खिला दे !" यह कहते-कहते उस स्त्री ने वहाँ ठहरना व्यर्थ समझकर प्रस्थान किया।

भगवानदेई मनोहर को गोद में लिए खड़ी थी। क्या करूँ, यही सोच रही थी। इतने में किसी के दौड़ते आने की आवाज़ आई। दूसरे ही क्षण उसने देखा, सिभू हाँफता हुआ बदहवास उसके सामने आ खड़ा हुआ और बेतहाशा बोला—"मनोहर !"

इतना कहते-कहते उसने भगवानदेई की गोद में मनोहर को देख लिया। भगवानदेई ने बच्चे को उसे दे दिया और कहा—"इसे तो बुख़ार चढ़ रहा है।"

सिभू आर्त्त नाद कर उठा और बच्चे को गोद में कसकर चिपकाते हुए बोला—"हाय ! मेरा बच्चा !"

और वह पलक झपकते कूदकर घर के बाहर हो गया !

भगवानदेई इस अनहोनी घटना का अर्थ न समझ सकी। थोड़ी देर वज्राहत-सी खड़ी रही, फिर घर का दरवाज़ा बन्द कर सिभू के घर की तरफ़ चली। दरवाज़ा भीतर से बन्द था। उसने धक्का दिया, साँकल खड़काई, आवाज़ें दीं, सब निष्फल ! कोई उत्तर न मिला। हारकर बेचारी लौट आई।

× × ×

सिभू 'बेटे को गोद में छिपाए' कोठे में घुस गया। पहले कुछ

देर कोठे में इधर-से-उधर घूमता रहा, फिर चारपाई पर लेट गया और कपड़ा ओढ़ लिया।

बच्चे का शरीर बुख़ार से तप रहा था। सिभू बड़बड़ाने लगा—"हे परमात्मा, मैंने महापाप किया है ! मैंने झूठी गवाही देकर भाई को फाँसी दिलवाई है। तू इसके बदले मुझे सड़ा-सड़ाकर मार, मेरे बच्चे से इसका बदला न ले ! हे गंगा माता, मैंने तुम्हारी साक्षी देकर बेटे की कसम खाई है, मैंने बड़ा अपराध किया है ! हे माता ! अपराध मैंने किया है, मुझे दंड दो। यह बच्चा निरपराध है। इसने संसार में आकर अभी कुछ नहीं देखा है, इसे बखस दो।"

सिभू बहुत देर तक निरन्तर 'गंगा माता, क्षमा करो ! गंगा माता, क्षमा करो !' की टेर लगाता रहा।

बच्चे के शरीर का ताप घटा नहीं; बढ़ता ही गया।

गंगा नदी से निकला हुआ एक नाला मधुपुर के पास से बहता था। समस्त ग्रामवासी इस नाले को गंगाजी के समान ही अभिनन्दनीय और इसके जल को गंगा-जल के समान पूज्य मानते थे। जब आधी रात बीत गई और सिभू ने मनोहर के ताप में कमी न देखी, तो वह उन्मादियों की-सी अवस्था में उठ खड़ा हुआ। बच्चा उसकी गोद में था और वह धीरे-धीरे नाले की तरफ़ बढ़ रहा था।

अँधेरी रात थी। सब चीज़ों पर स्याही पुती हुई थी। सारा गाँव निस्तब्ध था। गाँव के बाहर गीदड़ चिल्ला रहे थे। कहीं पत्ता तक नहीं खड़कता था।······डरावना समय था ! पर सिभू निर्भय निर्बाध भाव से नाले की ओर जा रहा था। रास्ते भर उसके मुँह से गंगा माता की टेर निकलती रही। कोई दूसरा भाव उसके मन में इस समय नहीं था। गंगा माता की प्रार्थना में उसका मन पूर्ण एकाग्र हो उठा था।

आख़िर नाला आया। सिभू किनारे पर खड़ा हो गया और

ज़ोर से बोलने लगा --"हे माता, मैंने तुझे साक्षी रखकर झूठी कसम खाई है; मैंने बड़ा पाप किया है। हे माता, मैं इसका परासचित करूँगा। अपराध मैंने किया है माता, इस अबोध बालक को तू बखस दे।"

सिभू थोड़ी देर चुप रहा। फिर कहने लगा---"हे माता, मैं तुझसे इस बालक की भीख माँगता हूँ। यह तेरे द्वार पर मौजूद है, चाहे ले, चाहे छोड़ दे। माता जब तक इसे बखस न देगी, यहाँ से नहीं हटूँगा। न बखसेगी, तो इसके साथ ही मैं भी तेरे जल में डूबकर प्राण दे दूंगा।"

सिभू के स्वर में योगियों की-सी दृढ़ता थी। आध घंटा वह पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा रहा। मुँह से 'हे गंगा माता' की अस्फुट ध्वनि निकल रही थी और सच्ची लगन के साथ वह अपनी तपस्या में निमग्न था।

ठंडी हवा चल रही थी। बच्चा मनोहर जाग उठा और अर्द्ध-निद्रित अवस्था में अभ्यासानुसार बोल उठा—"काका, दूध।"

सिभू कुछ क्षण तक आश्चर्यचकित-सा खड़ा रहा, फिर ख़ूब ज़ोर से चिल्ला उठा—"बोलो, गंगा माता की जय !"

हवा ज़ोर से चलने लगी। पेड़ों की पत्तियों ने हवा के सुर-में-सुर मिलाकर कहा—"गंगा माता की जय !"

नाले का पानी गौरव से ऐंठता, बल खाता, लहर लेता बहा जाता था। बच्चे को गोद में चिपकाए सिभू घर की ओर दौड़ चला।

× × ×

एक घर में से किसी स्त्री के रोने की आवाज़ आ रही थी। सिभू रुक गया। रुककर पहचाना, घर रामसनेही का था और आवाज़ दुर्गा की थी !

सिभू के कलेजे में मुक्का-सा लगा ! धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने दरवाज़े पर हाथ रखा। दरवाज़ा बन्द न था, हाथ लगाते ही खुल गया।

बालक-सहित सिभू भीतर घुसा। आज मुद्दत बाद सिभू इस घर में आया था। कभी इस घर को अपना समझता था—उस समय यह उसे जितना प्रिय, जितना परिचित जान पड़ता था, इस समय उतना ही डरावना, अपरिचित दिखाई पड़ रहा था ! चौक में पहुँचकर उसने सुना, भीतर की कोठरी में दुर्गा धीरे-धीरे विलाप कर रही है।

सिभू चुपचाप कोठरी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। कोठरी में सरसों के तेल का दीपक टिमटिमा रहा था। एक चटाई पर दुर्गा बैठी रो रही थी और सामने पृथ्वी पर उसके बालक की मृत देह पड़ी थी !

सिभू सिहर उठा !

दुर्गा रोते-रोते कह रही थी—"हाय बेटा, तुम भी मुझे छोड़कर चल बसे ! हे भगवान्, पूर्व जन्म के किन पापों का यह दंड दे रहे हो ? सुहाग फाँसी ने लूटा, घर-बार चोरों ने लूटा; एक बालक बचा था, इसे भी लुटवा दिया !! हे ईश्वर ! इस जन्म में तो मैंने अपने जानते कोई पाप किया नहीं, पहले जन्म में भी ऐसा क्या पाप कमाया है !···हे भगवान्, तुमने सब-कुछ छीना—अब मुझे ही क्यों ज़िन्दा रख छोड़ा है ? मेरे प्राण भी······"

सिभू अधिक न सुन सका। धीरे से किवाड़ ठेले और भीतर घुसकर पुकारा—दुर्गा !"

दुर्गा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सिभू फिर बोला—"दुर्गा, बच्चा बे-दम है क्या ?"

दुर्गा ने बच्चे की तरफ़ उँगली से संकेत किया। सिभू बैठ गया और बच्चे के शरीर पर हाथ रखा। शरीर ठंडा पड़ गया था

और निर्जीव हो चुका था।

सिभू खड़ा हो गया और अस्फुट स्वर में बोला—"ख़तम है!"

दुर्गा सिसकने लगी। सिंभू ने दुःख-भरे स्वर में कहा—"दुर्गा, मेरी बात सुनो।" फिर ठहरकर बोला—"तुम्हारा घर मैंने उजाड़ा है, मैं ही बसाऊँगा। अदालत में मैंने गंगाजली छूकर बेटे की कसम खाई थी। गंगा माता मेरे बच्चे को छीने लिए जा रही थीं। मैंने प्रार्थना करके उनसे बच्चा माँग लिया है। मेरे-जैसे पापी की प्रार्थना माता कभी स्वीकार न करती। मेरा बच्चा उन्होंने तुम्हारे लिए ही बखसा है। तुम्हारा एक बच्चा गया, दूसरा आया।"

फिर मनोहर को दुर्गा के पास बैठाकर बोला—"इसे लो, अब यह तुम्हारे सुपुर्द है।"

दुर्गा आश्चर्यचकित होकर सिंभू की बात सुन रही थी। उसने एक बार मृत पुत्र को देखा, दूसरी बार जीवित मनोहर को। हाय! दोनों साथ खेला करते थे!

दुर्गा सुनने लगी, देखें—सिभू आगे क्या कहता है!

सिभू बोला—"दुर्गा, मैंने बड़ा पाप किया है। मैं जाता हूँ; लौटकर नहीं आऊँगा। मेरी जगह-ज़मीन, मेरा रुपया-पैसा और मेरा मनोहर अब तुम्हारा है।...मैं जाता हूँ--सीधा जज साहब के पास जाऊँगा, सब हाल सच-सच कह दूँगा। रामसनेही निर्दोष है। सारा जाल नूरुद्दीन ने रचा था।"

सिंभू कोठरी से निकला, कुछ सोचकर फिर आया और बोला —"दुर्गा, मैं सदा के लिए जा रहा हूँ। एक बात पूछता हूँ, सच बताना।" पल भर ठहरकर फिर बोला—"दुर्गा, कुतबी ने मुझसे कहा था—'रामसनेही ने सरूपी पर मूठ छुड़वाई थी।' तुझे गंगा

माता की सौगंध, सच बता। यह बात सच थी या झठ ?"

दुर्गा काँप उठी। बदहवास-सी होकर कह उठी—"हाय राम ! कैसा कलंक !"

सिंभू ने उत्तर पा लिया। वह फिर वहाँ न ठहरा।

□□